जनवरी-मार्च | अंक : 90 | 2017
January-March | महिला अधिकार विशेषांक | ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

मुख्य संपादक
सन्तोष खन्ना

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

व्यक्तियों के लिए		संस्थाओं के लिए
मूल्य 100/- रुपए	डाक ख़र्च अलग	वार्षिक मूल्य 500/- रुपए
वार्षिक मूल्य 450/- रुपए	**वर्ष 23**	आजीवन संस्था सदस्य 20,000/- रुपए
आजीवन सदस्य 4000/- रुपए	**अंक 90**	Citation No. MVB-23/2016

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग
दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

'महिला विधि भारती'

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

अंक : महिला अधिकार विशेषांक, अंक-90 (जनवरी-मार्च, 2017)

मुख्य संपादक : सन्तोष खन्ना

परिषद की कार्यकारिणी

संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. श्रीमती मंजू चौधरी (कोषाध्यक्ष)
5. डॉ. प्रवेश सक्सेना (सदस्य)
6. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
7. श्री अनिल गोयल (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम (सदस्य)
15. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

प्रदेश प्रभारी

1. प्रो. देवदत्त शर्मा (उत्तर प्रदेश) 09236003140
2. प्रो. (डॉ.) सुरेंद्र यादव (राजस्थान) 09414442947

परामर्श मंडल

1. श्री एस.पी. सबरवाल
2. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह
3. प्रो. (डॉ.) एल.आर. सिंह
4. डॉ. उषा देव
5. प्रो. के.पी.एस. महलवार
6. श्री हरनाम दास टक्कर
7. श्री वी.पी. कालरा

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)

फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335, **मोबाइल :** 09899651872, 09899651272

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

अंक 90 में

1. 21वीं शती में अधिनायकवाद के प्रति बढ़ता रुझान / **संपादकीय** -- 5

विशेष आलेख

2. बलिदान के शिखर पुरुष गुरु गोविंद सिंह / **सन्तोष खन्ना** -- 9
3. जम्मू कश्मीर : जनमत संग्रह का मुद्दा बेइमानी / **डॉ. भगवानदास** -- 23
4. भारत में स्त्रियों की स्थिति : समाज एवं विधि / **राजेंद्र** -- 31
5. महिला अधिकार एवं क़ानूनी प्रावधान / **रिंकू गंगवानी** -- 34

कविता

6. माँ / **डॉ. प्रतिष्ठा श्रीवास्तव** -- 42
7. संयुक्त राष्ट्र संघ, महिलाएँ और मानव अधिकार : एक अध्ययन / **डॉ. निशा केवलिया शर्मा** -- 43
8. व्यक्तिक विधियों में भारतीय महिलाओं को संरक्षण : एक समान व्यक्तिक विधि की आवश्यकता / **डॉ. विनोद कुमार बागोरिया** -- 53
9. भारत में महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकार / **डॉ. शुभा शर्मा एवं डॉ. नयनी सिंह** -- 61
10. भारत में लैंगिक विभेद एवं शैक्षिक अवसरों की समानता का प्रश्न / **डॉ. मुकेश कुमार मालवीय** -- 66
11. महिला सशक्तिकरण एवं महिला अधिकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन / **मोहिनी कुमारी** -- 80
12. महिलाओं में समान अधिकार की दृष्टि एवं मानव अधिकार / **डॉ. प्रमोद अवस्थी** -- 90
13. यौनकर्मी महिलाओं के साक्षात्कार / **डॉ. विभा नायक** -- 96
14. दूध में मिलावट पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय / **रेनू** -- 102

पुस्तक समीक्षा

15. सृष्टिकर्ता की अनुपम कृति नारी-गाथा का दस्तावेज़ / **डॉ. उषा देव** -- 104

लेखक मंडल

सन्तोष खन्ना : मुख्य संपादक, 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका

डॉ. भगवानदास अहिरवार : प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म.प्र.)

राजेंद्र : असिस्टेंट प्रोफेसर, दयानंद कालेज ऑफ लॉ, कानपुर, **मोबाइल** : 9452451124, 9651323082, **ई-मेल** : rajendralaw4244@gmail.com

रिंकू गंगवानी : अतिथि व्याख्याता, विधि महाविद्यालय, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) **ई-मेल** : gangwanirinku11@gmail.com

डॉ. निशा केवलिया शर्मा : एसोसिएट प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ लॉ, आई.पी.एस. एकेडमी, इंदौर (म.प्र.), **ई-मेल** : nishakevaliya44@gmail.com, nagar.bharat@gmail.com

डॉ. विनोद कुमार बागोरिया : सहायक आचार्य, विधि संकाय, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ. शुभा शर्मा : पी.जी.एफ. शोधार्थी, गृह-विज्ञान विभाग, बी.एम.एल.जी., पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद

डॉ. नयनी सिंह : अंशकालीन प्रवक्ता, गृह-विज्ञान विभाग, बी.एम.एल.जी., पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद

डॉ. मुकेश कुमार मालवीय : सहायक प्राध्यापक, विधि-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं प्रधान संपादक-अधिकार एवं फिफ्टीन डेस, अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका (उत्तर प्रदेश)-221005 **मोबाइल** : 08004851126

मोहिनी कुमारी : शोध छात्रा, इतिहास विभाग, तिलकामाँझी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, **मोबाइल** : 08521685823, **ई-मेल** : mohini.khg@gmail.com

डॉ. प्रमोद अवस्थी : प्रोफेसर विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय महाविद्यालय खाचरौद, मध्य प्रदेश

डॉ. विभा नायक : असिस्टेंट प्रोफसर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। **मोबाइल** : 9868910426, **ई-मेल** : shephalika.naik@gmail.com

रेनू : के. 292, शकूरपुर, आनंद वास, दिल्ली-110034

डॉ. उषा देव : प्रतिष्ठित कहानीकार, पूर्व रीडर, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादकीय

21वीं शती में अधिनायकवाद के प्रति बढ़ता रुझान

स्वतंत्रोत्तर भारत के 70 वर्षों में संसदीय लोकतंत्र के अंतर्गत समय-समय पर हुए आम चुनावों में जनता बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती रही है और अनेक बार उसने जाति, धर्म तथा अन्य बातों से ऊपर उठ कर मतदान कर ऐसे लोगों को सत्ता सौंपी, जिन पर उन्हें विश्वास था कि वह देश-हित और जन-हित में नीतियाँ बना कर देश को आगे बढ़ाएँगे। जनता का वह विश्वास कितना सही या गलत निकला, यह अब इतिहास की बात है। यद्यपि हर सरकार ने देश को आगे बढ़ाने के लिए नीतियाँ बना कर कार्यक्रमों को लागू किया, किंतु फिर भी यह सब कार्यक्रम उतनी निष्ठा, लग्न और परिश्रम से लागू नहीं किए गए जितनी इस दिशा में अपेक्षा थी। समय-समय पर व्यापक पैमाने पर हुए घोटालों और भ्रष्टाचार ने आम जनता का कई बार विश्वास तोड़ा है और जनता को लगने लगा है कि लोकतंत्र और संसदीय लोकतंत्र जैसी व्यवस्था ही शायद उतनी कारगर नहीं है कि देश के सामने मुँह बाए खड़ी समस्याओं और चुनौतियों का समाधान दे सके। इस संदर्भ में कुछ कारणों से लगने लगा है कि 21वीं शती के दूसरे दशक में आज की युवा पीढ़ी का रुझान अधिनायकवाद के प्रति बढ़ रहा है। पिछले दो-एक वर्षों के दौरान हुए कुछ सर्वेक्षण इस ओर इंगित कर रहे हैं कि जनता का विशेष रूप से आज के कॉलेज युवा वर्ग का लोकतंत्र में विश्वास घट रहा है और उनमें अधिनायकवाद व्यवस्था के प्रति रुझान बढ़ रहा है। इस प्रकार के चौंकाने वाले तथ्य का यहाँ उल्लेख क्यों किया जा रहा है?

बच्चों संबंधी नागरिक चेतना अभियान के शोधकर्त्ताओं के सर्वेक्षण के अनुसार चौंकाने वाले निष्कर्ष सामने आए हैं। इस सर्वेक्षण में कहा गया है कि ''कॉलेज के दो-तिहाई छात्र इस बात से सहमत हैं कि भारत में शासन करने के लिए केंद्रीय स्तर पर एक ही शक्तिशाली राजनीतिक दल होना चाहिए। 58 प्रतिशत कॉलेज छात्रों की यह राय थी कि भारत में कई वर्षों के लिए सैनिक शासन ही हो ताकि कुछ ठोस कार्य हो सके।' पिछले वर्ष किए गए सर्वेक्षण में भी इसी प्रकार की राय उभर कर सामने आई थी जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आज की युवा पीढ़ी में अधिनायकवाद के प्रति स्पष्ट रूप से रुझान बढ़ रहा है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि युवा वर्ग में लोकतंत्र के प्रति आस्था

का ह्रास हो रहा है जोकि वस्तुतः शोचनीय तो है ही, विचारणीय भी है। एक चौंकाने वाला तथ्य और भी है कि युवा वर्ग में अधिनायकवाद में बढ़ती आस्था केवल भारत में ही देखने को नहीं मिली बल्कि पश्चिमी जगत के भी कॉलेज के युवाओं की सोच कुछ इसी प्रकार की है। हारवर्ड के एक राजनीतिक वैज्ञानिक यास्चा मौंक ने वर्ल्ड वेल्यूज सर्वेक्षण के आधार पर पिछले वर्ष जारी की गई एक रिपोर्ट के अनुसार कहा था कि अमेरिका और यूरोपियन देशों में भी कॉलेज के युवा वर्ग में अधिनायकवाद के प्रति बढ़ती आस्था के संकेत मिलते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार केवल 1930 के दशक में पैदा हुए अमेरिकी लोग ही सोचते हैं कि लोकतंत्र व्यवस्था बहुत जरूरी है जबकि 1980 के दशक में पैदा हुए 10 प्रतिशत अमेरिकी लोग ही ऐसा सोचते हैं। आज लगभग 50 प्रतिशत अमेरिकी युवाओं की राय यह है कि देश चलाने के लिए एक मजबूत नेता होना चाहिए। मौंक के अध्ययन के अनुसार पश्चिमी यूरोपियाई देशों तथा ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में भी इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ उभरती दिखाई दे रही हैं। कहा जा रहा है कि अमेरिका में ट्रंप राष्ट्रपति बने हैं, वह इन्हीं प्रवृत्तियों का ही परिणाम है क्योंकि ट्रंप ने अपने चुनाव अभियान में अपनी इसी प्रकार की छवि बनाई थी कि उनके चयन का अभिप्राय होगा, वर्तमान व्यवस्था को नकारना और नई व्यवस्था का शुभारंभ। कहा जा रहा है कि ट्रंप राष्ट्रपति बनते ही शक्तियों को अपने हाथों में केंद्रित कर उनका इस्तेमाल करना आरंभ कर देंगे, कांग्रेस संसद के दोनों सदन उनकी मुट्ठी में ही हैं और न्यायपालिका में भी उन्हें 100 से अधिक स्थानों पर नियुक्तियाँ करनी हैं।

अपने चुनावों के दौरान ट्रंप ने भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का उल्लेख करते हुए कहा था कि वह उस जैसा नेता बनना चाहेंगे। भाजपा ने भी चुनावों के दौरान नारा दिया था 'मजबूत नेता, निर्णायक सरकार'। अब उत्तर प्रदेश के वर्तमान मुख्य मंत्री श्री अखिलेश यादव के बारे में भी यही कहा जा रहा है कि 'आज अखिलेश एक मजबूत नेता के रूप में उभरे हैं और वे अकेले बसपा और भाजपा से टक्कर ले सकते हैं।

चेतन भगत ने हाल ही में ट्विटर पर युवा वर्ग से पूछा था कि क्या वह लोकतंत्र के बिना मोदी को देश चलाते हुए देखना चाहते हैं अथवा उन्हें मोदी नहीं लोकतंत्र चाहिए तो 10,000 लोगों ने इस पर अपनी राय दी थी जिसमें 55 प्रतिशत से अधिक युवाओं ने लोकतंत्र का नहीं, मोदी का चयन किया था।

प्रश्न यह उठता है कि युवाओं में लोकतंत्र व्यवस्था के प्रति घटती आस्था और अधिनायकवाद के प्रति बढ़ता रुझान आखिर क्यों दिख रहा है? इसका सबसे बड़ा और पहला कारण तो यह है कि लोगों का अपने जन-प्रतिनिधि राजनीतिज्ञों में विश्वास घट रहा है। उन्होंने देखा है कि लोकतंत्र भ्रष्टाचार का पर्याय हो कर रह गया है। यही नहीं, राजनीति में आज भी अपराधी तत्त्वों का बोलबाला है। प्रायः न्यायपालिका अर्थात् उच्चतम

न्यायालय ने चुनाव सुधारों के मसले में कई बार हस्तक्षेप कर ऐतिहासिक निर्णय दिए हैं। उच्चतम न्यायालय का एक ऐतिहासिक निर्णय था कि जिस राजनीतिक नेता को किसी अपराध में दो वर्ष से अधिक का कारावास का दंड मिले उसकी सदस्यता समाप्त कर दी जानी चाहिए और वह छः वर्ष तक चुनाव नहीं लड़ सकेगा। इस ऐतिहासिक निर्णय के बाद लालू प्रसाद को जब न्यायालय ने पाँच वर्ष का कारावास का दंड सुनाया तो उसे जेल तो जाना पड़ा और उसकी लोक सभा की सदस्यता भी रद्द कर दी किंतु तत्कालीन सरकार और लगभग सभी राजनीतिक दल उच्चतम न्यायालय के उस फैसले को संसद के माध्यम से उलटने के लिए तैयार हो गए थे कि जब तक ऐसे मामलों में उच्च न्यायालयों में अपील पर सुनवाई के बाद फैसला नहीं आ जाता, तब तक उस अपराधी को सदस्य बने रहने और चुनाव लड़ने की छूट होगी। राजनीतिज्ञों और विधि निर्माताओं की उच्चतम न्यायालय के इस एक रचनात्मक फैसले के प्रति नकारात्मक प्रक्रिया से जनता में उनके प्रति कोफ्त का भाव उभरा था। वह तो बीच में चुनाव आ गए और नई सरकार के आ जाने के बाद वह फैसला टल गया किंतु इससे देश के युवाओं को यह संदेश तो गया ही कि वर्तमान लोकतंत्र व्यवस्था में न तो भ्रष्टाचार पर अंकुश लग सकता है और न ही राजनीति के अपराधीकरण पर, चूँकि लालू यादव अपराध सिद्ध होने पर और उनकी सदस्यता रद्द होने तथा चुनाव न लड़ पाने के बावजूद अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता पर काबिज हैं। अतः वर्ष 2014 में चुनाव प्रचार में मोदी ने युवाओं से संवाद करते हुए कहा कि ''वह न तो खाएँगे, न किसी को खाने देंगे'', और राजनीति से अपराधीकरण का सफाया कर देंगे।'' तो युवाओं ने उनमें एक पाक साफ और मजबूत नेता की छवि को देखते हुए उनके दल को चुना और अपनी तरफ से देश को एक मजबूत नेता प्रदान किया, इसी विश्वास के साथ कि देश के हालात बदलेंगे और विकास होगा।

भ्रष्टाचार के अलावा कई अन्य समस्याएँ भी हैं जिनके कारण युवाओं में लोकतंत्र में आस्था का ह्रास हो रहा है। देश में बढ़ती आर्थिक असमानता के कारण भी युवाओं में बहुत ज्यादा असंतोष और आक्रोश की भावना है। भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के कारण बढ़ता पूँजीवाद का प्रभाव भी इसकी जड़ में है क्योंकि इससे भारत ही नहीं, पूरे विश्व में असमानता का घटाटोप है और वर्तमान समूची व्यवस्था का मानों अमानवीयकरण होकर रह गया है। अमीर लोग काले धन और गलत व्यापार आदि के आधार पर और अमीर होते जा रहे हैं जबकि गरीब लोग अपनी गरीबी से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। एक अन्य समस्या भारत में आरक्षण को लेकर है। यह सही है कि देश में दलितों को संविधान में आरक्षण की सुविधा दी गई थी किंतु पिछले 70 वर्षों से आरक्षण की व्यवस्था जारी रहने पर भी उसका लाभ पात्र व्यक्तियों को नहीं मिल रहा बल्कि इस सुविधा के बल पर जो लोग आगे बढ़ गए हैं वह इस पर कब्जा बनाए हैं और वास्तव में जिन्हें अब

यह सुविधा मिलनी चाहिए, उन्हें इसका लाभ नहीं लेने दिया जाता। इन सुविधाओं के बल पर फल-फूल रहे तत्त्व इस बारे में विचार करने के लिए भी तैयार नहीं होते कि इसे कैसे केवल उन्हीं लोगों को मुहैया कराया जाए जो अभी भी हर तरह से वंचित हैं। जब भी कोई इस मुद्दे को उठाता है इस सुविधा के भोगी ऐसे शोर मचाने लगते हैं मानो किसी ने मधुमक्खी के छत्ते को छेड़ दिया हो। दूसरी ओर इस सुविधा को गलत लोगों द्वारा हथियाने के कारण हमारा बहुत बड़ा युवा वर्ग योग्य होने पर भी कई अवसरों से वंचित रह जाता है। अतः उनमें पैदा होने वाला असंतोष और आक्रोश भी सामने आने लगता है। आरक्षण सुविधा को लेकर एक और दुष्परिणाम भी सामने आ रहा है कि देश के कई हिस्सों से कई प्रकार की सक्षम जातियाँ भी आरक्षण पाने के लिए अभियान चला कर दबाव बनाती रहती हैं जिसके कारण देश में कानून व्यवस्था तो बिगड़ती ही है बल्कि राष्ट्रीय संपत्ति को भी बहुत बड़ा नुकसान होता है, देश का विकास भी प्रभावित होता है। कभी गुजरात में पटेल, हरियाणा में जाट और राजस्थान में गुजर तथा इस प्रकार के अन्य लोग आरक्षण के मुद्दे पर बड़े व्यापक पैमाने पर आंदोलन कर देश को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचाते रहते हैं।

लोकतंत्र में घटती आस्था के लिए यहाँ और कई कारक गिनाए जा सकते हैं। यथा आतंकवादी वोट बैंक की राजनीति के कारण प्रायः आतंकी गतिविधियों और आतंकियों से सख्ती से नहीं निपटा जाता जिसके कारण जनता का जीवन हमेशा खतरे में रहता है। पुनः विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अधिनायकवाद अथवा तानाशाही से अनसुलझी समस्याओं को सुलझाया जा सकता है? प्रश्न यह भी है कि यदि कहीं कोई नेता मजबूती से समस्याओं के समाधान के लिए जूझता दिखाई देता है और जिनके हितों पर कुठाराघात होने लगता है तो वह उसे अधिनायकवादी या तानाशाह कहने लगते हैं तो क्या उसे अधिनायकवादी कहा जा सकता है? क्या समय के साथ शब्दों के परंपरागत अर्थ बदलने नहीं लगते? विश्व ने अधिनायकवाद या तानाशाही के कई दुष्परिणाम तो देखे हैं। सही तो यही होगा कि हम लोकतंत्र को सशक्त और पुख़्ता बनाएँ और इसे कारगर बनाने के लिए जो भी कदम उठाने की जरूरत हो, हर हालत में उठाया जाए। अधिनायकवाद अथवा तानाशाही कभी भी लोकतंत्र का विकल्प नहीं हो सकता।

देश में समय-समय पर होने वाले चुनावों में देश की पूरी शक्ति लग जाती है परंतु चुनावों में अपनाए जाने वाले हथकंडों से जनता का विश्वास डिगायमान होता है। अतः लोकतंत्र को पुख़्ता बनाने के लिए चुनाव सुधार करना अत्यावश्यक है। क्या सरकार और राजनीतिक दल इस पक्ष पर गंभीरता से विचार करेंगे? लोकतंत्र हितकारी कदम उठाकर ही अधिनायकवाद के प्रति बढ़ते रुझान को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है।

❑

सन्तोष खन्ना

बलिदान के शिखर पुरुष गुरु गोविंद सिंह

(गुरु गोविंद सिंह जी के 350वें प्रकाश पर्व के पुण्य अवसर पर महान गुरु को श्रद्धांजलि)

यदि हम मुगलकालीन इतिहास पर नज़र डालें तो हमारा परिचय कुछ ऐसे नायकों से होता है जिन्होंने तत्कालीन विकट विपरीत परिस्थितियों की परवाह न कर एक ऐसे अद्‌भुत अद्वितीय इतिहास की रचना की जो उस समय के काले, क्रूर और आतातायी पन्नों में अलग से स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है। इन नायकों में से ऐसे तीन उल्लेखनीय महानायक भी हुए जिन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा और लोक-हित और लोक-मंगल की संस्थापना के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। यह महामानव हैं महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह जी। महाराणा प्रताप मेवाड़ के वीर सम्राट, शूरवीर और एक ऐसे अदम्य योद्धा थे जिन्होंने धर्म और स्वाधीनता के लिए अनेक कष्टों और कठिनाईयों का सामना किया, किंतु उन्होंने अकबर के सामने सिर नहीं झुकाया। महाराणा प्रताप सम्राट अकबर के समकालीन थे। उस समय अधिकांश राजपूत राजाओं में अकबर के कृपा पात्र बनने की होड़ लगी हुई थी और इससे बड़े दुर्भाग्य की बात यह थी कि कुछ अकबर की सेना में बड़े-बड़े पदों पर ही नहीं थे, बल्कि अकबर के साम्राज्य को भारत में विस्तार देने के लिए मुगल सेना के साथ अपने ही लोगों के विरुद्ध लड़ रहे थे। महाराणा प्रताप ने अकबर के अनेक प्रयासों के बावजूद उनके साथ कभी किसी प्रकार की संधि या अधीनता स्वीकार नहीं की। उनके साथ युद्धों में मुगल सेनाओं को मुँह की खानी पड़ी। उन्हें भी मुगल सेना से परास्त होना पड़ा, उन्हें अपने लोगों का भी विरोध सहना पड़ा, किंतु मेवाड़ का यह वीर सम्राट, शूरवीर योद्धा, राष्ट्र गौरव और राष्ट्र भक्त सदा अडिग रहा।

उत्तर भारत में गुरु गोविंद सिंह और दक्षिण भारत में छत्रपति शिवाजी महाराज,

दोनों ही इतिहास पुरुष मुगल सम्राट औरंगजेब के समकालीन थे। वैसे दक्षिण में शिवाजी के मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का आरंभ शाहजहाँ के शासनकाल में ही हो गया था किंतु उनके असली युद्ध औरंगजेब के काल में मुगल सेनाओं से हुए। औरंगजेब ने उसे दबाने के लिए कई बार अपनी सेनाएँ भेजी, किंतु शिवाजी ने उन्हें बार-बार हराया। एक बार औरंगजेब ने शिवाजी महाराज को मिलने के लिए आगरा बुला भेजा, उनके आने पर उन्हें और उनके बेटे साँभा को बंदी बना लिया गया किंतु वह उनकी जेल से भाग निकले और अंत तक मुगलों से युद्ध करते रहे। सबसे बड़ी बात यह रही कि उन्होंने मराठा साम्राज्य की स्थापना की। उनका राज्याभिषेक वर्ष 1674 में हुआ। उन्होंने समर विद्या में कई नवाचार आरंभ किए और छापामार युद्ध की भी शैली विकसित की। उन्होंने प्राचीन हिंदू राजनीतिक प्रथाओं और दरबारी शिष्टाचारों को पुनर्जीवित किया और फारसी के स्थान पर मराठी और संस्कृत को राजकाज की भाषा बनाया। दुर्भाग्य की बात यह रही कि उनका 52 वर्ष की अल्पायु में ही निधन हो गया। किंतु जब तक वीर शिवाजी ज़िंदा रहे, उन्होंने औरंगजेब की नाक में दम कर रखा था।

उत्तर भारत में गुरु गोविंद सिंह के रूप में एक ऐसे विराट व्यक्तित्व महामानव का अवतरण हुआ जिन्होंने अपने शौर्यपूर्ण कर्मों और सर्वोच्च बलिदान से मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी। यदि 42 वर्ष की अल्पावस्था में उनका धोखे से वध न किया गया होता तो हो सकता है जिस प्रकार का वह देश को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे देश का इतिहास कोई दूसरा ही रुख अपनाता और देश को जो अभी और दो-ढाई शती की और गुलामी देखनी पड़ी, वह न देखनी पड़ती, तभी देश आज़ाद हो गया होता क्योंकि तब तक मुगल साम्राज्य के सर्वाधिक क्रूर शासक औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी और पश्चिम में मराठी साम्राज्य सन् 1818 तक चला और लगभग पूरे भारतवर्ष में फैल गया था।

जहाँ तक राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी केवल राजनीतिक व्यक्ति थे, गुरु गोविंद सिंह सिक्ख परंपरा के दसवें गुरु थे। किंतु वह समय की नब्ज को ख़ूब पहचानते थे और जानते थे कि केवल धर्म के क्षेत्र में सक्रिय रह कर वह उस समय की प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाएँगे, अतः उन्होंने उस समय खालसा पंथ की स्थापना की। गुरु गोविंद सिंह जहाँ विश्व की बलिदानी परंपरा में अद्वितीय थे, वहीं वे स्वयं एक महान् योद्धा, महान् लेखक, मौलिक चिंतक और महान् आध्यात्मिक नेता थे।

इसलिए उन्हें संत सिपाही भी कहा जाता है क्योंकि वे शस्त्र और शास्त्र, भक्ति और शक्ति के अद्‌भुत संगम थे। जिस प्रकार उन्होंने धर्म और देश के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, उसी के आधार पर उन्हें 'सर्वस्वदानी' भी कहा जाता है।

गुरु गोविंद सिंह के बारे में हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, ''बड़े सौभाग्य से देश को ऐसा लोकनायक प्राप्त होता है। भारतवर्ष ऐसा ही गौरवशाली देश है, जिसने गुरु गोविंद सिंह जैसे सच्चे वीर को जन्म दिया। पवित्र चरित्र, अडिग उत्साह अप्रतिम साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकृतोमय मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असंदिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षर भंडार ही वीर है। गुरु गोविंद सिंह इन सब गुणों के मूर्तिमान रूप थे।''[1]

जब गुरु गोविंद सिंह का अवतरण हुआ, उस समय देश की, विशेष रूप से उत्तर भारत की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। वैसे भी बाहरी आक्रमण का दंश सर्वप्रथम पंजाब को ही झेलना पड़ता था अतः विधर्मी शासकों के लगातार घोर अत्याचारों के कारण पंजाब का समाज अंदर तक टूट चुका था। फिर भी यद्यपि देश में कई भागों में हिंदू अनुयायी शासन के विरुद्ध सिर उठा रहे थे किंतु मुगलों की सेनाएँ बड़ी क्रूरता से विद्रोहों का दमन कर रही थीं। वैसे भी मुसलमान भारत में 'अपने एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लेकर देश में आए थे। उनका उद्देश्य यहाँ के लोगों को मुसलमान बनाना और उन पर एकछत्र राज्य करना था, इसलिए जो भी यहाँ बादशाह बनता, वह कभी अपनी प्रजा के हित के बारे में नहीं सोचता था, अपने भोग-विलास के लिए खजाने भरना और साम्राज्य के विस्तार के लिए युद्ध करना ही उनका मुख्य कार्य रहता था।

उत्तर भारत में औरंगजेब का धर्मांधता भरा साम्राज्य अपने चरम पर था जब सिक्खों के दसवें गुरु गोविंद सिंह का जन्म हुआ। उनका जन्म 22 दिसंबर, 1666 में पटना में हुआ। उस समय उनके पिता नौवें गुरु तेग बहादुर असम में धर्म प्रचार के लिए गए हुए थे और वहीं से वे पंजाब लौट गए थे। गुरु गोविंद अपनी छः वर्ष की आयु तक पटना में ही रहे। गुरु तेग बहादुर सीधे पंजाब चले गए, इसका कारण इतिहासकारों ने यह बताया है कि उस समय औरंगजेब की नीतियों के कारण देश की धार्मिक और राजनीतिक अवस्था में एक तूफ़ान-सा आ गया था, लोग उसकी दमन नीति के शिकार हो रहे थे; और बड़े पैमाने पर लोगों का धर्म परिवर्तन भी किया जा रहा था, ऐसे में गुरु तेग बहादुर जैसे आध्यात्मिक और सामाजिक महत्त्व का व्यक्ति इन घटनाओं से बेपरवाह कैसे हो सकता था, वैसे भी सिक्ख गुरुओं का मुगल शासकों से सीधा संघर्ष उसके पहले ही प्रारंभ हो चुका था।

जब बालक गोविंद अपने पिता के पास आए तो पिता ने उनकी शिक्षा-दीक्षा का पुख़्ता प्रबंध कर दिया था, इसके बारे में गुरु गोविंद सिंह ने अपनी कृति 'विचित्र नाटक' में स्वयं लिखा है :--

कीनी अनिक भाँति तन रक्षा। दीनी भाँति-भाँति की शिक्षा।।
तब हम कर्म मो आए। देव लोक तब पिता सिधाए।।

उनके पिता एवं नवें गुरु ने उनके पूरे व्यक्तित्व को ही संस्कारित किया, उन्हें भाँति-भाँति की शिक्षा दी, धर्म और कर्त्तव्य का महत्त्व भी समझाया। पिता की शिक्षा ''बाँह जिन्हाँ दी पकड़िए, सर दीजै बाँह न छोड़िए'' ने गुरु गोविंद सिंह को ही नहीं, उनके साहिबजादों को भी 'घर पहिए धरम न छोड़िए' की दृढ़ता प्रदान की। उनके छोटे-छोटे मासूम लाड़ले बेटों ने ज़िंदा दीवारों में चिना जाना स्वीकार किया, लेकिन धर्म पर आँच न आने दी।[2]

पिता गुरु तेग बहादुर ने 'न भै मानत आन' का जो मंत्र उन्हें घुट्टी में पिलाया था, वह उनके संपूर्ण जीवन का मंत्र बन गया। उन्होंने सिंहों की भाँति अन्याय और अत्याचार का विरोध करते हुए तत्कालीन निर्जीव जनता में भी इस मंत्र को ऐसा फूँका कि उन्हें 'सवा लख से एक लड़ाऊँ' सूरमाओं में तब्दील कर एक नए इतिहास की रचना की।

यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि नौ वर्ष की छोटी-सी आयु में ही उनके सिर से उस महान् व्यक्तित्व पिता का साया छिन गया और उन्हें उस छोटी-सी आयु में ही गुरु गद्दी का दायित्व निभाना पड़ा। गुरु तेग बहादुर ने धर्म की ख़ातिर अपना बलिदान दे दिया था जिसकी प्रेरणा भी अप्रत्यक्ष रूप से उस समय बाल गुरु ने ही उन्हें दी थी। औरंगजेब की धर्मांधता के कारण संपूर्ण मुगल साम्राज्य में धर्म-परिवर्तन का आंदोलन छिड़ा हुआ था। उस समय हिंदू गौरव के सभी चिह्न मिटाए जा रहे थे। हिंदू मंदिरों को गिराया जा रहा था। हिंदू विद्यालयों के स्थान पर मस्जिदें खड़ी की जा रही थीं। उस समय विद्रोह करने वालों के लिए दो ही विकल्प थे मौत या इस्लाम स्वीकार करना। इस संबंध में गोकुलचंद नारंग लिखते हैं, ''हिंदू चूँकि स्वभाव से अत्यधिक सौम्य और इच्छाओं की दृष्टि से अत्यधिक संतुष्ट थे, उनकी आकांक्षाएँ अत्यंत मर्यादित थी। शारीरिक उद्यम में भी उनकी रुचि नहीं थी। वे आतंक से पीड़ित और हतोत्साहित थे किंतु एक बात थी कि वे अपने धर्म के लिए मज़बूती से जुड़े थे।''[3]

''तुरकन अधिक अनीति अपनाई। हिंदू कीय सबै तुरक बनाई।''[4] वाली दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में जब कश्मीरी पंडित कश्मीर के सूबेदार शेरखान के अत्याचारों से पीड़ित हो गुरु तेग बहादुर से सुरक्षा की गुहार लगाने आनंदपुर आए तो उनको विचार-मग्न देख बालक गोविंद राय ने जब कारण पूछा तो उन्होंने गंभीर होकर कहा, ''इस समय धर्म रक्षा का एक ही उपाय है कि कोई बड़ा धर्मात्मा पुरुष अपना बलिदान दे। तभी नौ वर्ष के बालक गोविंद ने मानो भविष्यवाणी करते हुए कहा, ''पिताजी, इस समय आपसे

बड़ा धर्मात्मा पुरुष कौन हो सकता है जो अपना बलिदान देकर धर्म की रक्षा करे।'' गुरु गोविंद के इस साहसिक वाक्य ने गुरु परंपरा में बलिदान की एक ऐसी स्वाहूत मिसाल क़ायम की जिसने न केवल गुरु गोविंद सिंह देश और धर्म के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए प्रेरित हुए अपितु जिस उद्देश्य के लिए गुरु तेग बहादुर ने यह बलिदान स्वाहूत किया था वह उद्देश्य भी पूरा हुआ। जनसाधारण में इस बलिदान की तीव्र प्रतिक्रिया हुई, डॉ. नारंग ने लिखा है, ''समस्त उत्तरी भारत में गुरु तेग बहादुर को सब जानते और मानते थे। राजस्थान के राजपूत उनका अत्यंत आदर करते थे, पंजाब के किसान उनकी पूजा करते थे। अतः समस्त हिंदू जाति ने उनकी हत्या को धर्म के नाम पर एक सर्वोच्च बलिदान समझा। समस्त पंजाब में क्रोध और प्रतिकार की अग्नि भड़क उठी। माझा और मालबा के जाटों को केवल एक नेता की आवश्यकता थी जिसके नेतृत्व में लड़कर वह अपने अपमान का बदला ले सकते थे। नव-वयस्क गोविंद में उन्हें इस प्रकार का नेतृत्व दिखाई दिया।''

वस्तुतः जिस प्रकार के महामानव गुरु गोविंद सिंह थे, जिस प्रकार उस समय के संतप्त भारत के क्षितिज पर उनका उदय हुआ था, उनसे बेहतर कोई नेता हो ही नहीं सकता था। अगर उस समय पहाड़ी राजे उनका विरोध न कर या उनके विरुद्ध न लड़ उनके साथ आ जाते तो मुगल साम्राज्य को उखाड़ फेंकना कोई कठिन नहीं था किंतु उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति ऐसी बनी थी कि ऐसा न हो सका, सब राजे अपने-अपने स्वार्थ, अपने-अपने अहं और अहंकार का शिकार हो देश हित से विमुख हो चुके थे। गुरुओं विशेष रूप से गुरु गोविंद सिंह के सर्वस्व बलिदान के बावजूद देश और देश की जनता को ऐसी कीमत चुकानी पड़ी कि कई बार अपने इतिहास के राजाओं-महाराजाओं के बारे में सोचकर शर्मिंदगी ही होती है। उनकी आँखों के सामने कैसे गुरु तेग बहादुर ने स्वाहूत बलिदान दे दिया था, मर मिटना मंजूर किया किंतु आतातायी के समक्ष झुके नहीं। उनके बलिदान का इतिहास साक्षी है, उनका बलिदान कोई अर्द्धसत्य नहीं है यह तो इतिहास के काल पर लिखा एक कठोर सत्य है।

गुरु तेग बहादुर साहब ने उनसे अभयदान लेने आए कश्मीरी पंडितों से कह दिया ''जाओ, औरंगजेब से कह दो कि गुरु नानक की गद्दी पर इस समय नवम् गुरु तेग बहादुर विराजमान हैं। यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लेंगे तो हम भी अपना धर्म-परिवर्तन करने में कुछ संकोच नहीं करेंगे।''

गुरु तेग बहादुर के इस सर्वोच्च बलिदान के बारे में लिखा गया है कि उन्होंने कश्मीर के हिंदुओं को ज़बरदस्ती इस्लाम कबूल करवाने का खुला विरोध किया। दिल्ली में बुलाए जाने पर उन्हें इस्लाम कबूल करने के लिए कई दिनों तक यातनाएँ दी गईं, उनके सामने

ही उनके शिष्य मतिदास को आरे से चीर कर और भाई दयाल दास को तेल में उबाल कर तथा भाई सतीदास के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। उनका भी शीश धड़ से अलग कर दिया गया। उनके बलिदान की महत्ता का उल्लेख स्वयं गुरु गोविंद सिंह ने अपनी रचना 'विचित्र नाटक' में इस प्रकार किया है :--

तिल जंजू राखा प्रभु ताका।
लीनो बड़ो कलू महि साका।
साधनि हेतु जिमि करी।
सीस दियो पर सी न उचरी।।
धरम हेत साका जिनि कीआ।
सीस दीया परु सिस न दिया।।[5]

गुरु गोविंद सिंह संत तो थे ही, वह मुगलों के जनता पर अत्याचारों का विरोध करने के लिए सिपाही भी बने, उन्होंने शास्त्र और शस्त्र दोनों का उपयोग किया। यह उस समय की ज़रूरी माँग थी। गुरु परंपरा में इससे पहले भी आत्मरक्षा के लिए शस्त्र की ज़रूरत महसूस करते हुए उसका उपयोग किया गया था। इस संबंध में लिखा गया है कि ''प्रथम गुरु नानक से पंचम गुरु अर्जुन देव तक प्रबल सामाजिक चेतना तथा कृषक समाज के आर्थिक और नैतिक उद्धार के प्रयास अधिक दिखाई देते हैं। अब तक सिक्ख गुरु बिलकुल निस्पृह ऐसे धार्मिक समुदाय के रूप में दिखाई देता है जिसका मुगल शासकों से सक्रिय विरोध नहीं था। हालाँकि गुरु नानक ने अपनी वाणी में मुगलकालीन आतातायी के विरुद्ध आरंभ से ही विरोध करना शुरू कर दिया था जब वह अपने एक शिष्य लालो से कहते हैं, ''हे लालो, वह (बाबर) पाप की बारात लेकर काबुल से दौड़ा आया है।

पाप की जंग की ले काबल हुँ धाइआ ज़ोरी मंगेदान वे लालो।
सरम धरमु दुह छप खलोय कडू फिरे परधान वे लालो।
काजिआ बामणा की गल थकी अगद पड़ैं शैतान वे लालो।।[6]

(निलंग महला)

अर्थात् वह सबसे बलपूर्व धन ले रहा है। धर्म और शर्म दोनों मुँह छिपाकर खड़े हैं। झूठ प्रधान है। काजी एवं ब्राह्मण को कोई नहीं पूछता। विवाह मंत्र शैतान पढ़ रहा है।

किंतु छठे गुरु हर गोविंद सिंह ने गद्दी पर बैठते ही यह अनुभव कर लिया था कि उन विपरीत स्थितियों में अपनी सुरक्षा और न्याय के लिए तलवार का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। इससे पहले वह देख चुके थे कि कैसे गुरु अर्जुन देव पर राजद्रोह का झूठा आरोप लगा कर उन पर दो लाख रुपए का जुर्माना लगाया गया जिसे गुरु ने यह कहते हुए जुर्माना देने से इनकार कर दिया कि हमारी ओर से ऐसा कोई क़दम नहीं उठाया गया जिससे जुर्माना देने का प्रश्न उत्पन्न हो। अतः अर्जुन देव के साथ 30 मई, 1606

में लाहौर नदी के किनारे अमानुषिक व्यवहार किया गया और उनका वध कर दिया गया।[7] उनके वध की स्वीकृति स्वयं जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजक-ए-जहाँगीर' में लिखी है।[8] 'गुरु अर्जुन देव द्वारा किए जा रहे कार्यों को बंद करने तथा उन्हें अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए मैंने मुर्तजा खान से कहा है कि वह उन्हें यातना देकर मार डाले।' गुरु अर्जुन देव ने अपना बलिदान देकर यह सिद्ध कर दिया कि जब-जब भारतीय संस्कृति पर अथवा देश पर ख़तरा उत्पन्न होता है तब-तब ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते हैं जिन्हें न देह का मोह व्यापता है, न किसी और स्वार्थ का।[9]

छठे गुरु हर गोविंद ने अपने पिता श्री अर्जुन देव के बलिदान को देखते हुए धर्मपंथ के साथ-साथ राजकाज को भी वरीयता देना प्रारंभ किया। इसके साथ उन्होंने दो कृपाणें धारण की -- एक पीरी की तथा दूसरी मीरी की। मात्र 11 वर्ष की आयु में गुरु गद्दी पर बैठते ही उन्होंने शस्त्र विद्या और घुड़सवारी में निपुणता हासिल की। बाद में उन्होंने बादशाह के तख्त की टक्कर में अकाल तख्त भी स्थापित किया। मुगल शासक जहाँगीर गुरु की स्वच्छंद प्रकृति के कारण जल-भुन गया। जहाँगीर गुरु गोविंद की बढ़ती सैन्य शक्ति से इतना आतंकित था कि उसने ग्वालियर के दुर्ग में उन्हें बंदी बना लिया। कालांतर में उन्हें रिहा कर दिया गया। उनके रिहा होने के बाद काफ़ी समय तक शांति रही जिसका लाभ गुरु ने धर्म प्रचार के साथ-साथ संगठन को मज़बूत करने में उठाया। 1627 में जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ की धार्मिक नीति भी कट्टरता की ओर अभिमुख थी। उसने अपने शासनकाल में मंदिरों का निर्माण रुकवा दिया और गौ-हत्या निषेधाज्ञा में ढील दे दी, अतः गुरु हर गोविंद को मुगल आतातायियों ने अपने अनुयायियों को मुक्त कराने तथा उनसे शोषित पीड़ित जनता को उनके अत्याचारों से बचाने के लिए मुगलों से तीन युद्ध (1628, 1631 और 1634) लड़ने पड़े, तीनों में ही उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

गुरु गोविंद सिंह के समक्ष देश के लिए दिए गए इन बलिदानों की एक पुष्ठ और लंबी परंपरा थी। लाखों लोगों की वैचारिक, धार्मिक स्वतंत्रता के लिए दिए गए गुरु तेग बहादुर के बलिदान ने सदियों से प्रसुप्त जनता में स्वत्व की चेतना जागृत की थी, जिस गुरु ने शोषित-अपमानित हिंदुओं के मान-स्वाभिमान के लिए अपने पिता को बलिदान के लिए प्रेरित किया था, वह स्वयं भला बलिदान के रास्ते पर कैसे न चलते, वह भी जब औरंगजेब जैसा कट्टर बादशाह हिंदुओं के धर्म परिवर्तन के लिए हर तरह से कटिबद्ध था। समकालीन परिवेश में जब मिर्जा राजा जय सिंह, राजा जसवंत सिंह राठौर जैसे राजपूत राजा केवल अपने पदों और सुविधाओं की चिंता में व्यस्त थे, उन्हें न तो अपनी प्रजा की चिंता थी और न ही उनमें कोई राष्ट्रीय सरोकार बचा था। इस प्रकार के अंधे और आतातायी युग में गुरु गोविंद सिंह एक ऐसे सूर्य की भाँति प्रज्ज्वलित हुए जिन्होंने न

केवल असंख्य लोगों को धर्म-परिवर्तन से बचाया बल्कि उनके जीवन में एक नए गौरव की रोशनी का संचार किया। पिता की शहादत के समय ही गुरु गोविंद सिंह को अपने जन्म का उद्देश्य स्पष्ट हो गया था, तभी तो उन्होंने अपनी रचनाओं में लिखा :--

हम इह काज जगत् मो आयो।
धर्म हेतु गुरु देव पठायो।।[9]

गुरु गोविंद सिंह ने हिंदू धर्म और देश की रक्षा के लिए जिन-जिन कार्यों को अंजाम दिया, वह इतिहास के पृष्ठों पर दैदीप्यमान हो संपूर्ण मानव जाति के लिए आज तक प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। उन्होंने अपने अद्वितीय बलिदान से हिंदुत्व और भारतीय संस्कृति की रक्षा की। अगर यह कहा जाए कि देश और समाज की वर्तमान स्थितियों में हमें आज फिर उस महा-बलिदानी युग पुरुष गुरु महाराज की आवश्यकता है क्योंकि आज भी समाज में जाति-पाति, छुआछूत, ऊँच-नीच का दंश विद्यमान है तो कुछ गलत न होगा। गुरु महाराज ने जो खालसा पंथ की नींव रखी थी, उसका उद्देश्य केवल ''सवा लाख से एक लड़ाऊँ ही नहीं था बल्कि उस समय निर्जीव, निष्प्राण प्रतीत होने वाले समाज में एकता, संगठन, वीरत्व और क्षत्रियत्व की भी भावना भरना था। इसके साथ एक समतामूलक समाज की स्थापना करना भी उनका लक्ष्य था तभी तो उन्होंने लिखा :--

''भेड़ों को मैं शेर बनाऊँ,
भूप ग़रीबन को कहलाऊँ,
चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ
इन्हीं से राजे उपजाऊँ
राज करन की रीति सिखाऊँ
इन्हीं को सरदार बनाऊँ
तबै गोविंद सिंह नाम कहाऊँ।''[10]

1699 को बैसाखी वाले दिन उन्होंने जिस नाटकीय रीति से संपूर्ण मानव जाति की जागृति के लिए आह्वान किया था, उसमें उनका एक विशेष उद्देश्य था, उसमें वह उन सभी को सम्मिलित करना चाहते थे जिनका समाज में अभी तक अस्तित्व नगण्य था। अतः उनके पाँच प्यारों में लगभग निम्न जातियों के व्यक्ति भी थे। कोई जाट था तो कोई धोबी, नाई या कहार। गुरु ने निम्न जातियों के लोगों का मनोबल बढ़ाया और उन्हें शस्त्रास्त्र की विद्या में प्रशिक्षण देकर उनमें शौर्य और आत्म-विश्वास का भाव उत्पन्न किया।

गुरु गोविंद सिंह को पहाड़ी राज्यों से कई युद्ध लड़ने पड़े, कई युद्ध मुगल सेना से लड़ने पड़े किंतु लगभग हर बार दुश्मनों को गुरु गोविंद सिंह की कम किंतु शौर्यपूर्ण

सेना से मुँह की खानी पड़ी, इन विजयों का कारण था युद्धों में दिखाई गई उनकी वीरता और निर्भयता तथा साथ ही उनके एकनिष्ठ शिष्यों की शूरवीरता और बलिदान। भगाणी का युद्ध गुरु गोविंद सिंह के जीवन का प्रथम युद्ध था। गुरु गोविंद सिंह के बढ़ते धार्मिक और सैन्य वर्चस्व को पहाड़ी राजे पचा नहीं पा रहे थे, ''निम्न कही जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने के प्रयासों और उन्हें अपने संगठन में सवर्ण कहे जाने वाले वर्गों के बराबर स्थान देने के क्रांतिकारी प्रयासों से परंपरागत जाति-अभिमानी पहाड़ी प्रदेश के राजपूत नरेशों को क्रुद्ध कर दिया था, इस संबंध में इंदूभूषण बैनर्जी ने लिखा है : ''गुरु गोविंद सिंह एक ऐसे मत का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उदार विचारों का प्रचारक था और जिसके अधिकांश अनुयायी जाट थे जिन्हें राजपूत छोटी जाति का समझते थे। राजनीतिक सुविधाएँ, सामाजिक उच्चता और जाति-अभिमान ने मिल कर पहाड़ी राजाओं को गुरु के विरुद्ध मोर्चा बनाने के लिए प्रेरित किया। इस युद्ध में पहाड़ी राजाओं की सेनाएँ हार गई और मैदान छोड़ कर भाग निकली। युद्ध जीत कर गुरु गोविंद सिंह आनंदपुर आकर रहने लगे। इस युद्ध के बाद पहाड़ी राजाओं से गुरु गोविंद सिंह ने संधि कर ली और गुरु जी ने मुगल सेना के ख़िलाफ़ इन राजाओं की हुसैनी युद्ध में सहायता भी की किंतु युद्ध में इन्हीं राजाओं ने खालसा पंथ की स्थापना के पश्चात् उनकी बढ़ती शक्ति और संगठन से भयभीत हो कर न केवल औरंगजेब को उन पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया बल्कि स्वयं भी विशाल मुगल सेना के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। एक तरफ़ से मुगल सेना ने और दूसरी तरफ़ से इन गद्दार राजाओं ने जब आनंदपुर को घेर लिया तो भी गुरु गोविंद सिंह और उनकी सेना ने उनका डट कर मुकाबला किया किंतु यह युद्ध आठ महीने की लंबी अवधि तक चला जिसमें आनंदपुर में रसद पानी तक ले जाना बंद कर कर दिया। भूखी-प्यासी सेना कब तक विशाल वाहिनी का मुकाबला करती? अंततः मज़बूर हो कर गुरु गोविंद साहब को आनंदपुर छोड़ना पड़ा। अभी वह रास्ते में ही थे कि उन पर फिर पीछे से आक्रमण कर दिया गया। उसी युद्ध में उनके दोनों छोटे बेटे ज़ोरावर सिंह (9 वर्ष) और फतेह सिंह (7 वर्ष) अपनी दादी माता गुज़री सहित अपने एक रसोइये गंगाराम के साथ उसके गाँव चले गए। गुरुजी अपने परिवार से बिछुड़ चुके थे। चमकौर की गढ़ी में उन्हें पुनः शत्रुओं ने घेर लिया, यहाँ पर उनके दोनों पुत्रों तथा चालीस साथियों ने बड़ी वीरतापूर्वक संग्राम किया किंतु उनके लगभग सभी साथी और दोनों बेटे वीर गति को प्राप्त हुए। गुरु गोविंद सिंह किसी प्रकार मुगल सेना की आँखों में धूल झोंक कर वहाँ से निकल गए। इधर विश्वासघाती गंगाराम रसोईये ने धन के लोभ में गुरु के दोनों छोटे बेटों और माता गुज़री को सरहिंद के सूबेदार वजीर खाँ को सौंप दिया।

उन दोनों छोटे बेटों को धर्म परिवर्तन करने के लिए कई प्रकार की यातनाएँ दी जाने लगीं किंतु सरहिंद का जालिम सूबेदार जब उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए राजी न कर सका तो 27 दिसंबर, 1704 को उन्हें ज़िंदा दीवारों में चिनवा दिया गया। गुरु गोविंद सिंह जी की माता गुज़री ने इस शोक में अपने प्राण त्याग दिए।

वैसे तो गुरु गोविंद सिंह जी के जीवन पर हमेशा ही ख़तरा मँडराता रहा, किंतु कई बार अपनी जान बचाने के लिए उन्होंने मुगल सेना की आँखों में धूल झोंक कर स्वयं को सुरक्षित किया। उनके जीवन में ऐसा समय भी आया जब उनसे सारा परिवार बिछुड़ गया, दोनों बड़े बेटे वीर गति को प्राप्त हो चुके थे, दोनों छोटे बेटों को सरहिंद में दीवारों में ज़िंदा चिनवा दिया गया था, इस शोक में उनकी माता गुज़री ने भी प्राण त्याग दिए थे, सभी शिष्य भी बिछुड़ चुके थे, उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ा क्योंकि शत्रु सेना बराबर उनका पीछा कर रही थी। कई दिनों तक वह माछीवाड़ा के घने और काँटेदार जंगलों में नंगे पैर छिपते-छिपाते रहे, कितने ही दिन उन्होंने आक के पत्ते खा कर अपनी क्षुधा शांत की। कितनी ही शीत की रातें उन्होंने खुले में गुजारी। अंततः दो पठानों, नबी खाँ और गनी खाँ ने उन्हें फटे वस्त्रों और छालों से भरे पैरों से सोते देखा। वे जानते थे कि शत्रु सेना गुरु की जान की प्यासी हो रही है। परंतु उन्होंने उनके लिए अपने प्राणों का संकट स्वीकार किया[11] क्योंकि वे गुरु पर श्रद्धा रखते थे। उन्होंने गुरु को मुसलमान फकीर जैसे नीले वस्त्र पहनाए और एक पालकी में बिठा कर उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले गए जहाँ से वे जेतपुर पहुँचे और वहाँ एक अन्य मुसलमान राय काल्हा ने उनकी सहायता की। वहीं से उन्हें पता लगा कि सरहिंद के सूबेदार वजीर खाँ ने गुरु पुत्रों को दीवार में चिनवा कर नृशंस हत्या कर दी है, उस हृदय विदारक समाचार को सुन कर भी उन्होंने धैर्य नहीं खोया और वह कह उठे, ''नहीं, मेरे पुत्र मरे नहीं हैं, उन्होंने धर्म का सौदा करने से इंकार कर दिया। वे अमर हो गए हैं।''

इसके बाद गुरु गोविंद सिंह ने पुनः अपने को स्थापित किया, पुनः कुछ सेना बनाई। सरहिंद के सूबेदार वजीर खाँ की सेना उनका अब भी पीछा कर रही थी। खिदराणा युद्ध में उन्होंने शत्रु सेना को फिर पूरी तरह पराजित किया। औरंगजेब के निधन के साथ ही समय बदला। औरंगजेब के बड़े बेटे बहादुर शाह को गद्दी प्राप्त करने में गुरु ने उसकी सहायता की थी। अतः वह गुरु का बड़ा सम्मान करता था। उन्होंने फिर धर्म प्रचार करना शुरु किया, इसके लिए बहादुर शाह के साथ ही दक्षिण में नान्देड़ पहुँचे और वहीं धर्म उपदेश करने लगे। वहीं पर एक पठान ने दाँव लगा कर उन्हें जख़्मी कर दिया जिसके कारण 7 अक्तूबर, 1708 को 42 वर्ष की आयु में ही उनका देहांत हो गया। समझा यही जाता है कि सरहिंद के सूबेदार वजीर खाँ गुरु गोविंद

सिंह की तत्कालीन मुगल सम्राट बहादुर शाह के साथ नजदीकियाँ देख कर घबरा गया था और उसी ने उनकी हत्या करवाई थी।

गुरु गोविंद सिंह ने तत्कालीन हिंदू-तुर्क संघर्ष को भारत के प्राचीन देवासुर संग्राम का ही एक अंग माना और कृष्ण और राम वंश के अवतारों की परंपरा में अपने स्वयं को उसी अवतार परंपरा का अंग माना तभी स्वयं अपने जीवन के उद्देश्य के बारे में लिखा है :--

''हम इह काज जगत् मो आए।
धर्म हेतु गुरु देव पठाए।।
जहाँ जहाँ तुम धरम बिधारो।
दुस्ट दोखियन पकरि पछारो।।
याही काज धरा हम जनमे।
समझ लेह साधु सम मनमे।।
धर्म चलावन संत उबारन।
दुस्ट समन को मूल उपारन।।''

तत्कालीन समय में देश में विभिन्न आधारों पर बंटे समाज में राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय भावना का संचार करना ही सबसे बड़ी चुनौती थी। तत्कालीन राजाओं और अभिजात वर्गों से इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती थी। वैसे भी जब भी जहाँ भी क्रांति होती है वह आम जन से ही होती है। गुरु गोविंद सिंह इस बात से परिचित थे। इसलिए उन्होंने तत्कालीन जनमानस के मनोविज्ञान को समझ कर सदियों से दलित, दमित एवं अपमानित जीवन जीने वाले की सामूहिक चेतना का सही-सही उपयोग कर उन्हें स्वाभिमान की चेतना से युक्त कर उन्हें शोषण और अन्याय से लड़ने के लिए समर्थवान और वीर योद्धा बना दिया। ''यह आश्चर्यजनक नहीं है कि गुरु जी के संस्पर्श से वे मनुष्य, जिन्होंने कभी कृपाण को छुआ तक न था और न ही बंदूक को अपने कंधे पर रखा था, सशक्त वीर बन गए। उन्होंने धीमरों, धोबियों और चमारों को ऐसा सेनापति बना दिया जिनके नाम सुनकर बड़े-से-बड़े राजा भी भयभीत होने लगे। हृदय में ईश्वर का नाम धारण कर, हाथ में हथियार धारण कर जब ये सूरमा अत्याचारियों पर टूट पड़ते, तो उन्हें नाकों चने चबवा देते हैं :--

''महाकाल का करयो ध्याना।
घट में निरख हरि भगवाना।
तुर्क म्लेच्छन सो नहीं मिलना।
लौ हथियार सामने पिलना।''

इस प्रकार का क्रांतिकारी परिवर्तन लाना अंधकारपूर्ण परिस्थितियों में सुगम न था किंतु गुरु गोविंद सिंह ने मनसा, वाचा, कर्मणा -- तीनों स्तरों पर विशिष्ट एवं व्यापक ढंग से किए गए प्रयासों से इसे संभव कर दिखाया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं आचरण का आदर्श प्रस्तुत किया, अपनी लेखनी का भी सकारात्मक प्रयोग कर ऐसी रचनाएँ लेखनीबद्ध की जो धर्म से जुड़े समाज को वाँछित राह दिखा सकती थी। उन्होंने एक धर्म नेता के साथ-साथ एक जन नेता के रूप में जनता को धर्म और भक्ति के मार्ग से युद्ध के मार्ग तक पहुँचा दिया। उनकी खालसा पंथ की स्थापना हिंदू जाति को एक अनुपम देन है।

उनके चारों पुत्र धर्म की रक्षा के लिए शहीद हो गए। इसके लिए बिना विचलित हुए वह कहते हैं :--

इन पुत्रन के सीस पर वार दिए सुत चार।
चार मुए तो क्या हुआ जीवित कई हज़ार।।

अपनी उस क्षति को भी गुरु ने उसे ईश्वरेच्छा कह कर कर्त्तव्य परायणता का जो परिचय दिया है वह गुरु गोविंद सिंह जैसा कोई महामानव ही दे सकता है। सब कुछ बलिदान कर देने के पश्चात् भी उनका पोर-पोर धर्म युद्ध की पुकार करता है और जीवन कई हज़ार में उनकी आत्मा को देखता है।

गुरु साहब शायद समझ चुके थे कि उनके जन्म का उद्देश्य पूरा हो गया है, उन्होंन संत और सिपाही के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था, उनके असंख्य शिष्य, उनके चार बेटे, उनकी माता जी गुज़री इस कार्य में बलिदान हो चुके थे, कहीं वह यह भी समझ चुके थे कि अब उनके इस जगत् से प्रस्थान का समय आ गया है, कि अब उन्हें अपने प्राणों का बलिदान भी देना पड़ेगा, इसलिए उन्होंने बंदा बैरागी को अपने उत्तराधिकारी के रूप में नामित किया, यह केवल संयोग की बात नहीं थी कि उन्होंने बंदा को 3 सितंबर, 1708 में खालसा के रूप में दीक्षित किया था और 5 अक्तूबर, 1708 को पंजाब भेज दिया। बंदा बैरागी ने गुरु द्वारा सौंपे गए कार्य को पूरा किया चाहे फिर भी इसके लिए उन्हें अनेक यातनाएँ देकर उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें मारा गया था। इस बारे में कहा गया है कि ''बंदा बैरागी ने पंजाब पहुँच कर गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। वह आतातायियों की सेना पर काल बन कर टूट पड़ा कि उसके वीरतापूर्ण कार्यों से मुगल साम्राज्य की जड़ें हिल गईं। उसने सरहिंद को तहस-नहस कर दिया, नवाब वजीर खाँ को युद्ध में परास्त कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। पहाड़ी राजाओं का भी वध कर गुरु जी के साथ किए गए अन्याय का बदला लिया।[12]

इतिहास साक्षी है कि उन्होंने 1710 में सिरहिंद जीता। वह किसानों की आर्थिक आजादी के पक्षधर थे। उन्होंने कई समाज सुधार किए और सामान्य नागरिकों के प्रति भी अपनी संवेदनशीलता दिखाई।

गुरु गोविंद सिंह जैसे महामानव का जीवन त्याग और बलिदान की एक ऐसी महागाथा है जिसका कोई दूसरा उदाहरण इतिहास में ढूँढ़े से भी नहीं मिलता है। उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि, उनका पौरुष, दृढ़ता और उनकी शक्ति और शौर्य स्वयं में बेजोड़ था। गुरु गोविंद सिंह एक ऐसे मानवतावदी, समन्वयवादी, सुधारवादी, राष्ट्रवादी महापुरुष थे जिन्होंने सूझबूझ, संकल्प और समर कौशल एवं शौर्य से युगांतकारी परिवर्तनों का उन्मेष किया।

भारत के संविधान में हर धर्म के प्रति समभाव रखने की बात कही गई है। गुरु गोविंद सिंह भी इस विचारधारा की नींव पहले ही डाल चुके थे। विदूषी डॉ. वीणा अग्रवाल ने गुरु गोविंद सिंह के देश के प्रति योगदान को रेखांकित करते हुए लिखा है, ''गुरु गोविंद सिंह निडरता से ऐसे मानव धर्म का प्रचार करते रहे, जिसमें हिंदू, सिक्ख अथवा मुस्लिम की भिन्नता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मात्र व्यक्तित्व अथवा नैतिक शुद्धता उसमें इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना संपूर्ण मानवता को अज्ञान के मार्ग से बचा कर सत्योन्मुख करने का भाव है। यह मानव धर्म है जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्व की चेतना का स्वीकार है।''[15] क्या कोई इनकार कर सकता है कि हमें गुरु गोविंद सिंह के दिखाए रास्ते पर चलने की आज भी उतनी ही ज़रूरत है जितना इतिहास के उस कालखंड में थी।

गुरु गोविंद सिंह जी ने अपने बाद 'गुरु ग्रंथ साहिब' को ही गुरु मानने का आदेश दिया। स्वयं को परमेश्वर मानने वालों को तो उन्होंने पहले आगाह कर दिया था कि जो ऐसा करें, वह नरक के अधिकारी होंगे, उन्होंने लिखा है :--

''जो हमको परमेसर उचरि हैं।
ते सब नरक कुड में नरि हैं।।[13]

तब से गुरु का आदेश पालन करते हुए सिक्ख क्या, सभी 'गुरु ग्रंथ साहब' को ही गुरु मानते हैं।

गुरु गोविंद सिंह साहब जैसे महानतम व्यक्तित्व को बार-बार नमन करते हुए हमारा सिर गर्व और गौरव से, श्रद्धा और भक्ति से उनके चरणों में झुक जाता है परंतु मन और आत्मा की गहराई में एक त्रासदायक पीड़ा का अहसास भी अवश्य होता है कि तत्कालीन भारत के राजा-महाराजाओं ने गुरु का विरोध कर क्यों स्वयं और मानवता को शर्मसार किया कि आज भी हमें अपने होने पर कोफ्त लगती है।

क्या हम गुरु गोविंद सिंह जैसे महान् महानायकों से प्रेरणा प्राप्त कर अब देश का ऐसा इतिहास लिखेंगे कि आने वाली पीढ़ियों को शर्मिंदा न होना पड़े, बल्कि वह हम पर गर्व कर सकें। अब देश में इतिहास के काले अध्यायों को पुनः न दोहराया जाए बल्कि कबीर के शब्दों में हम जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करें :--

सूरा सोई पहिचानियो, जो लरै दीन के हेत।
पुरजा-पुरजा कट मरे, कहु हूँ न छोड़े खेत।।

❑

संदर्भ

1. सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, पृ. 74
2. गुरु गोविंद सिंह और खालसा पंथ की स्थापना, डॉ. वीणा अग्रवाल, पृ. 62
3. Transformation of Sikhism, pp. 78-79
4. भाई सुखा सिंह, गुरु विलास, 5/10-11
5. विचित्र नाटक, 137
6. गुरु गोविंद सिंह और उनकी हिंदी कविता, डॉ. महीप सिंह, पृ. 1
7. भारतवर्ष का इतिहास, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, भाग-2, पृ. 114
8. जहाँगीर ने तुज़के-ए-जहाँगीर में यह भी लिखा है, दरिया व्यास के किनारे गोइसवाल में अर्जुन नामक हिंदू फकीर देश में रहता है जिसने सारे भोले-भाले हिंदुओं और कई मूर्ख मुसलमानों को अपने पीछे लगाया हुआ है। ...तीन-चार पीढ़ियों से यह दुकान चल रही है। काफ़ी समय से मेरे मन में विचार आ रहा है कि झूठ की इस दुकान को बंद करना चाहिए या गुरु को मुसलमान फिरके में ले आना चाहिए।
9. विचित्र नाटक, 6/42
10. जीवन कथा गुरु गोविंद सिंह, पृ. 451
11. एवोल्यूशन ऑफ खालसा, भाग-2, पृ. 73
12. गुरु गोविंद सिंह और उनकी हिंदी कविता, डॉ. महीप सिंह, पृ. 44
13. हिस्ट्री ऑफ सिक्ख, पृ. 78
14. विचित्र नाटक, 6/32
15. गुरु गोविंद सिंह और खालसा पंथ की स्थापना, डॉ. वीणा अग्रवाल, पृ. 19

डॉ. भगवानदास

जम्मू कश्मीर : जनमत संग्रह का मुद्दा बेइमानी

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के तहत देशी रियासतों को हिंदुस्तान अथवा पाकिस्तान में से किसी भी एक में सम्मिलित होने अथवा स्वतंत्र रहने के मिले विकल्प के अंतर्गत जम्मू कश्मीर रियासत के महाराजा ने स्वतंत्र रहने का निर्णय लिया। पाकिस्तान महाराजा हरिसिंह की इस इच्छा को बर्दाश्त नहीं कर पाया तथा उसने उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के कबीलों को धर्म के नाम पर भड़काया। पाकिस्तान की सहायता से इन कबाइलियों ने व कबाइलियों के भेष में पाकिस्तानी सैनिकों ने 22 अक्टूबर, 1947 को एटाबाद की तरफ से कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। संक्षिप्त में महाराजा ने जब चारों ओर से अपनी रिसायत को कबाइलियों से घिरा पाया तब उनके सामने भारत सरकार से सैनिक सहायता माँगने के अलावा कोई चारा नहीं रहा। 24 अक्टूबर, 1947 को महाराजा हरिसिंह द्वारा भारत सरकार के समक्ष सैनिक सहायता की अपील की गई। 25 अक्टूबर को रियासत के भारत में अधिमिलन पत्र Instrument of Accession पर महाराजा हरिसिंह द्वारा हस्ताक्षर कर जम्मू कश्मीर रिसायत का भारत में विधिवत् विलय कर दिया गया। महाराजा द्वारा इस Instrument of Accession पर हस्ताक्षर करते समय अपनी घोषणा में कहा गया कि "With the Conditons obtaining at present in my state and the great Emergency of the situation as it exist. I have no option but to ask for the help from the Indian Dominion, Naturally they can not send the help asked for me without my state acceding to the Dominion of India. I have accordingly decided to do so and I attach the Document of Accession for Acceptance by your Government."[1]

जम्मू कश्मीर रिसायत के भारत में विलय को पाकिस्तान आज भी स्वीकार नहीं करता, संविधान सभा द्वारा इस विलय की पुष्टि किए जाने को वह नकारता है तथा रियासत के मामले में जनमत संग्रह का मुद्दा बार-बार अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने का कोई अवसर

नहीं छोड़ता।

यहाँ पर प्रश्न विचारणीय है कि क्या भारत ने जम्मू कश्मीर के संबंध में कोई जनमत संग्रह का वायदा किया था? यदि हाँ, तब उसे क्यों नहीं निभाया। आईए, हम इन प्रश्नों के उत्तर खोजने हेतु समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन करें।

आईए हम यहाँ ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करें :--

25 अक्टूबर, 1947 को इस अधिमिलन पत्र Instrument of Accession पर महाराजा द्वारा किए गए हस्ताक्षर को स्वीकार करते हुए भारत सरकार द्वारा स्पष्ट किया गया था कि "The union government, therefore, decided to accept the accession of Kashmir making it clear that this acceptance is subject to the endorsement of the Maharaja decision by the people of state and that it was their wish that as soon as the law and order have been restored in the Kashmir and her soil cleared of the invaders, the question of the state accession should be settled by a referendum of people."[2]

स्पष्ट है कि भारत सरकार द्वारा महाराजा हरिसिंह का Instrument of Accession स्वीकार किया जाना एक तरह से महाराजा के निर्णय की जनता द्वारा पुष्टि किए जाने की शर्त पर आधारित था, यही नहीं, 2 नवंबर, 1947 को प्रथम प्रधान मंत्री स्व. जवाहरलाल नेहरू द्वारा आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में जम्मू कश्मीर रिसायत में जनमत संग्रह कराने की इच्छा को स्पष्ट किया गया था।

''कश्मीर के बारे में निर्णय पूर्ण विचार करके और इसके सब परिणामों को आँकने के बाद लिया गया है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो कश्मीर रिसायत को आक्रमणकारी लूट लेते, वहाँ पर आग लगाते तथा स्त्रियों के साथ बलात्कार करते। यह आक्रमणकारियों की तलवार की शक्ति के समक्ष झुकने वाली बात होती। जब कश्मीर में शांति तथा कानून स्थापित हो जाएगा तो संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे किसी अंतर्राष्ट्रीय संगठन के तत्वावधान में जनमत संग्रह करवाया जाएगा।''[3]

स्व. श्री नेहरू जी द्वारा 21 नवंबर, 1947 को पुनः इस वायदे को संसद में दुहराया गया। संसद में अपने बयान में नेहरू जी ने कहा था कि ''कश्मीर के लोगों को संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे किसी निष्पक्ष निर्णय न्यायाधिकरण के तत्वावधान में अपने भविष्य का निर्णय करने का अवसर दिया जाएगा।''[4] लार्ड माउंट बैटन की अध्यक्षता में बनी संयुक्त प्रतिरक्षा परिषद् की बैठक में भाग लेने जब पाकिस्तानी प्रधानमंत्री लियाकत अली दिसंबर, 1947 में भारत आए तब भी भारतीय प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा कहा गया कि पाकिस्तान पहले कबाइली आक्रमणकारियों को कश्मीर से हटाए फिर संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में वहाँ जनमत संग्रह कराया जाएगा।[5]

प्रश्न यह कि जब भारत सरकार ने कश्मीर में कानून व्यवस्था बहाली के पश्चात् जनमत संग्रह का वायदा किया था तब इस वायदे को क्यों नहीं निभाया गया। इस का उत्तर भी हमें इतिहास में खोजना होगा। भारत द्वारा जनमत संग्रह को संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे किसी अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण की देखरेख में कराने का वायदा किया गया था। अतः भारत सरकार द्वारा 31 दिसंबर, 1947 को संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष जम्मू कश्मीर समस्या समाधान की दिशा हेतु सौंपे जाने से लेकर वर्तमान तक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 8 बार प्रयास किए जा चुके है परंतु, पाकिस्तान की हठधर्मिता व कश्मीर हड़पने की चाल के चलते कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सका है।

भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान के साथ कई दौर की बातचीत के बाद भी कश्मीर समस्या को सुलझता न देख तथा दोनों देशों के मध्य खुले युद्ध की संभावना के चलते लार्ड माउंट बैटन के सुझाव पर अंततः 31 दिसंबर, 1947 को जम्मू कश्मीर समस्या संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप दी गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् द्वारा समस्या समाधान की दिशा में भारत-पाक संयुक्त आयोग का गठन किया गया तथा सुरक्षा परिषद् द्वारा 13 अगस्त 1948 को पारित अपने प्रस्ताव के प्रथम बिंदु में ही पाकिस्तान से कश्मीर में अपनी सेनाएँ हटाने तथा विदेशी कबाइलियों व सामान्य रूप से कश्मीर में न रहने वाले नागरिकों को वहाँ से हटाने तथा पाकिस्तान द्वारा खाली किए गए इस क्षेत्र का प्रशासन संयुक्त राष्ट्र भारत-पाक आयोग के अधिकारियों द्वारा किए जाने का सुझाव दिया गया था। पाकिस्तान द्वारा इन दोनों शर्तों को पूरी करने की दिशा में भारत द्वारा अपनी सेनाएँ कश्मीर से हटाने को कहा गया एवं जनमत संग्रह कराने के लिए अमेरिकी नागरिक चेस्टर निमिटेज को नियुक्त किया गया। चेस्टर निमिटेज द्वारा दोनों देशों की सरकारों से बातचीत की गई पर समस्या का हल न देख उन्होंने आयोग से इस्तीफा दे दिया।

17 अगस्त-दिसंबर 1949 को संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष मैकनाटन ने समस्या के समाधान की दिशा में भारत एवं पाकिस्तान द्वारा एक साथ अपनी सेनाएँ कश्मीर से हटाने व क्षेत्र को विसैन्यीकृत (Demiliparised) करके वहाँ जनमत संग्रह का सुझाव दिया। इस प्रस्ताव को भारत द्वारा इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया कि इसमें पाकिस्तान को आक्रामक राष्ट्र घोषित नहीं किया गया था, तत्पश्चात् संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने 24 मार्च, 1950 को एक अन्य प्रस्ताव पास करके 13 अगस्त 1949 के प्रस्ताव के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुऐ ऑस्ट्रेलिया उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ओवन डिक्कसन को नियुक्त किया। डिक्कसन महोदय ने भारत एवं पाकिस्तान द्वारा 5 महीने के अंदर कश्मीर क्षेत्र को विसैन्यीकृत (Demiliparised) कर जनमत संग्रह कराने

का सुझाव दिया।

भारत द्वारा पुनः इस प्रस्ताव को अमान्य किए जाने पर उन्होंने अपने नए सुझावों में जम्मू एवं लद्दाख को भारत में तथा आजाद कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने एवं कश्मीर घाटी में जनमत संग्रह का सुझाव दिया। इस प्रस्ताव को भारत एवं पाकिस्तान दोनों राष्ट्रों द्वारा अमान्य कर दिया गया। परिणामस्वरूप डिक्कसन महोदय ने भी त्याग पत्र दे दिया।

1951 में संयुक्त राज्य अमेरिका के फ्रेंक ग्राहम को मध्यस्थ के पद पर नियुक्त किया गया, जिन्होंने कश्मीर राज्य में जनमत संग्रह पूर्ण कराने के लिए कश्मीर युद्ध विराम रेखा के एक ओर भारत द्वारा 18000 एवं दूसरी ओर पाकिस्तान द्वारा 6000 सैनिकों को छोड़ शेष सैनिक हटाने एवं जनमत संग्रह अधिकारी की नियुक्ति का सुझाव दिया। भारत ने इस प्रस्ताव को अमान्य करते हुए कहा कि पाकिस्तान आक्रमणकारी राष्ट्र है पहले कश्मीर से पाकिस्तान के सभी सैनिक निकाले जाएँ। जब तक एक भी आक्रमणकारी कश्मीर की धरती पर है, जनमत संग्रह का प्रश्न ही नहीं उठता। 16 फरवरी, 1947 को संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, क्यूवा एवं ऑस्ट्रेलिया ने सुरक्षा परिषद् में एक सम्मिलित प्रस्ताव रखा जिसमें जम्मू कश्मीर में जनमत संग्रह के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की आपातकालीन सेनाएँ भेजने का सुझाव दिया गया। भारतीय प्रतिनिधि श्री वी.पी. मेनन ने अपने लंबे 07 घंटे 48 मिनट्स के ऐतिहासिक भाषण में इस प्रस्ताव का पुरजोर विरोध किया। सोवियत संघ ने इस प्रस्ताव का यह कहते हुए वीटो कर दिया कि कश्मीर समस्या का हल वहाँ की संविधान सभा कर चुकी है।

24 जनवरी, 1957 को उपर्युक्त राष्ट्रों द्वारा पुनः एक अन्य प्रस्ताव रखा गया कि कश्मीर में शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में जनमत संग्रह कराया जाए, प्रस्ताव के पक्ष में दस मत आए। सोवियत संघ ने पुनः वीटो कर दिया। 21 फरवरी, 1957 को संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् ने समस्या के समाधान व जनमत संग्रह की व्यवस्था के लिए श्री गुनार जारिंग को नियुक्त किया जिन्होंने 14 मार्च, 1957 से 10 अप्रैल, 1957 के मध्य तीन बार दिल्ली व कराची की यात्राएँ की परंतु समस्या का हल न देख 30 अप्रैल, 1957 को सुरक्षा परिषद् को सौंपी गई अपनी रिपोर्ट में मिशन के फेल होने व कश्मीर समस्या सुलझाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। इसके पश्चात् दिसंबर, 1957 में सुरक्षा परिषद् ने एक अन्य प्रस्ताव पारित कर, फ्रेंक ग्राहम को कश्मीर का विसैन्यीकरण करके व वहाँ जनमत संग्रह की व्यवस्था के लिए अधिकृत किया। फ्रेंक ग्राहम ने अपनी रिपोर्ट में भारत एवं पाकिस्तान दोनों के मध्य वार्ता के लिए शांति का वातावरण बनाने, युद्ध विराम रेखा का उल्लंघन न करने, दोनों देशों के प्रधान मंत्रियों द्वारा परस्पर वार्ता कर जनमत संग्रह के बारे में संयुक्त राष्ट्र प्रतिनिधि से दोनों राष्ट्रों द्वारा वार्ता किए जाने की

अनुशंसा की। चूँकि उपर्युक्त प्रस्ताव 13 अगस्त, 1948 के संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् के प्रस्तावों से आगे थे जिनमें पाकिस्तान को भारत की बराबरी का दर्जा दिया गया था अतः इन्हें भारत द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत द्वारा अपने वायदे के अनुरूप कश्मीर समस्या का शांतिपूर्वक समाधान निकालने हेतु इसे संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपा गया था तथा वहाँ जनमत संग्रह कराने के लिए 13 अगस्त, 1948 से लेकर दिसंबर 1957 तक 8 बार संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् द्वारा जनमत संग्रह हेतु, मध्यस्थता आयोग प्रस्ताव, सिफारिशें इत्यादि प्रयास हो चुके हैं, परंतु पाकिस्तान के आक्रमणकारी राष्ट्र होने के बावजूद इसे भारत के समकक्ष रखने पर कभी भारत ने इन्हें स्वीकार नहीं किया, कभी पाकिस्तान की हठधर्मिता के चलते जनमत संग्रह नहीं हो सका।

संविधान सभा का निर्वाचन ही जनमत संग्रह

1952 से विश्व की परिस्थितियों में तेजी से बदलाव होने लगा। नाटो, सीटो, सियाटों, बगदाद पैक्ट अमेरिका के नेतृत्व में अस्तित्त्व में आ गए। 1954 में पाकिस्तान ने अमेरिका के साथ सैनिक संधि कर ली तथा 1955 में बगदाद पैक्ट का सदस्य बन गया। पाकिस्तान द्वारा सैनिक गठबंधन का सदस्य बनते ही संपूर्ण एशियाई उपमहाद्वीप के शक्ति संतुलन एवं राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ने की पूरी संभावना थी। अतः भारत इन तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता था। नई विश्व राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप नई विदेश नीति एवं राष्ट्र नीति अपनाना आवश्यक था। चूँकि पाकिस्तान कश्मीर से अपनी सेनाएँ हटाने के लिए तैयार नहीं था बल्कि वह शेष कश्मीर को सैनिक शस्त्रों के बल पर जीतना चाहता था, पश्चिमी गुट के साथ सैनिक गठबंधन के संलग्न हो जाने के विश्व मंच पर उसे पश्चिमी महाशक्तियों का समर्थन मिलने लगा था, ऐसी अवस्था में जनमत संग्रह का वायदा मजाक बन कर रह गया था। भारत इन सभी तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता था उसे नई परिस्थितियों के अनुरूप नई राष्ट्र नीति अपनाना अपरिहार्य हो गया था। अतः भारत ने 1951 में ही जम्मू कश्मीर संविधान सभा के चुनाव कराने का निर्णय लिया गया, चुनावों में भारी बहुमत से निर्वाचित संविधान सभा के प्रत्याशियों की जीत ने स्पष्ट कर दिया कि जम्मू कश्मीर का जनमत संग्रह अर्थात् चुनाव द्वारा भारत में विलय हो चुका है। संविधान सभा के नेता शेख अब्दुल्ला भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ में घोषणा कर आए थे कि कश्मीर का भारत में पूर्ण विलय हो चुका है। 6 फरवरी, 1954 को जम्मू कश्मीर की इस संविधान सभा ने जम्मू कश्मीर की भारत में विलय की पुष्टि कर दी। भारत सरकार ने अपने संविधान में संशोधन करके 14 मई, 1954 को अनुच्छेद 370 के अंतर्गत जम्मू कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देना स्वीकार कर लिया।

19 नवंबर 1956 को जम्मू कश्मीर का संविधान बनकर तैयार हो गया जिसके अनुसार जम्मू कश्मीर को भारत का एक राज्य घोषित किया गया और कहा गया कि संविधान की इस धारा में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। 26 जनवरी, 1957 को भारतीय गणतंत्र की 27वीं वर्षगाँठ पर जम्मू कश्मीर भारतीय संघ का पूर्ण अंग बन गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनमत संग्रह अर्थात् जनता द्वारा चुनाव के माध्यम से गठित संविधान सभा ने जम्मू कश्मीर के भारतीय संघ में जब विलय की पुष्टि ही कर दी है, जम्मू कश्मीर को भारत का एक राज्य घोषित कर दिया है, तो अब जनमत संग्रह का प्रश्न ही कहाँ उठता है? बावजूद इसके पाकिस्तान हर अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जम्मू कश्मीर के जनमत संग्रह की बात उठाता है, अपनी बात के समर्थन में पाकिस्तान के तर्क निम्नानुसार है :--

1. कश्मीर का भारत में विलय भारत द्वारा प्रयुक्त की गई शक्ति एवं भय का परिणाम था।
2. कश्मीर का भारत में विलय जनमत संग्रह की शर्त पर आधारित था जिसे पूरी किए बिना कश्मीर का भारत संघ में स्थायी रूप से विलय नहीं माना जा सकता।
3. कश्मीर जैसे मुस्लिम बहुल प्रदेश का विलय पाकिस्तान में होना चाहिए।
4. जनमत संग्रह के प्रश्न पर पाकिस्तान की समानता का अधिकार है तथा कश्मीर के संबंध में कोई भी निर्णय पाकिस्तान की सहमति से ही हो सकता है।
5. कश्मीर के महाराजा ने जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत में सम्मिलित होना स्वीकार किया था जो अवैध है।[6]

पाकिस्तान के उपर्युक्त तर्कों के विरुद्ध भारत के तर्क इस प्रकार हैं :--

1. जम्मू कश्मीर का भारत में विलय वहाँ के महाराजा हरिसिंह की इच्छा व उनके विलय पत्र पर हस्ताक्षर से ही किया गया था तथा महाराजा द्वारा यह विलय भारत के भय से नहीं बल्कि इस डर से किया था कि पाकिस्तानी कबाइलियों के भेष में सैनिक उनकी रियासत को न हड़प लें, केवल भारत ही इसकी रक्षा कर सकता है।
2. कश्मीर की जनता ने स्वतंत्र रूप से निर्वाचित अपनी संविधान सभा के माध्यम से न केवल महाराजा के उपर्युक्त विलय की पुष्टि की है, बल्कि जम्मू कश्मीर को भारत का एक राज्य घोषित किया है। अतः जनमत संग्रह की बात स्वतः पूर्ण हो गई है।
3. आत्म-निर्णय एक लोकतांत्रिक प्रश्न है जिसका प्रयोग राज्यों को टुकड़ों में विभाजित करके नहीं दिया जा सकता।
4. स्वयं पाकिस्तान ने जिन राज्यों का अपने में विलय किया उन्हें कभी आत्म-निर्णय का अधिकार नहीं दिया।

5. जो राष्ट्र स्वयं अपनी जनता के लिए आत्म-निर्णय का अधिकार नहीं दे पाया, वह जम्मू कश्मीर के संबंध में आत्म-निर्णय की बात कैसे कर सकता है?
6. आक्रमणकारी राष्ट्र विलय की बात नहीं कर सकता।
7. भारत ने जनमत संग्रह का आश्वासन दिया था यह विलय की पूर्ण शर्त नहीं थी।
8. जनमत संग्रह का आश्वासन कश्मीर शासन को दिया था न कि पाकिस्तान को।
9. जनमत संग्रह का आश्वासन पाकिस्तान द्वारा संपूर्ण कश्मीर से अपनी सेनाएँ हटाने की शर्त पर आधारित था, लेकिन पाकिस्तान ने अपनी सेनाएँ कभी नहीं हटाई।
10. कश्मीर में स्वतंत्र चुनाव हो जाने के बाद जनमत संग्रह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।
11. कश्मीर के मुस्लिम बहुलता के आधार पर पाकिस्तान में इसके विलय की बात बैमानी है, क्योंकि भारत ने कभी द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत को नहीं माना।[7]

उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन के पश्चात् यहाँ पुनः यह प्रश्न हमारे मस्तिष्क में बार-बार उभरता है कि जब महाराजा हरिसिंह द्वारा जम्मू कश्मीर रिसायत के भारत में विलय पत्र पर बगैर किसी पूर्व शर्त के हस्ताक्षर किए गए थे तब ऐसी स्थिति में जनमत संग्रह कराने के वायदे करने व इसे बार-बार दुहराने का क्या औचित्य था?

इस प्रश्न का उत्तर भी हमें तत्कालीन ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में खोजना होगा। चूँकि जूनागढ़ एवं हैदराबाद रिसायतों का विलय भी भारत में वहाँ की जनभावनाओं के अनुरूप किया गया था। अतः इसी आदर्श के चलते तत्कालीन प्रधान मंत्री स्व. जवाहरलाल नेहरू द्वारा जम्मू कश्मीर के संबंध में जनमत संग्रह की बात बार-बार दुहरायी गई। स्व. नेहरू को इस बात का अंदेशा नहीं था कि भारतीय सेनाओं द्वारा कश्मीर से पाकिस्तानी कबाइली आक्रमणकारियों को खेदेड़ते समय ही संयुक्त राष्ट्र संघ की पहल पर ही भारत को युद्ध विराम करना पड़ेगा तथा वह हिस्सा जहाँ से आक्रमणकारियों को खदेड़ा जा रहा था, वह पाकिस्तान का हो जाएगा, आक्रमणकारी पाकिस्तान वहाँ से अपनी सेनाएँ कभी नहीं हटाएगा व अंतर्राष्ट्रीय मंच पर समस्या समाधान की दिशा में बराबरी का स्थान प्राप्त कर लेगा। नेहरू की सोच यही रही होगी कि अधिमिलन के पश्चात् शीघ्र ही कश्मीर की भूमि से आक्रमणकारी कबाइलियों को भारतीय सेनाएँ मार भगाएगी व वहाँ कानून का राज्य स्थापित हो जाएगा। काननू का राज्य स्थापित होते ही वहाँ जनमत संग्रह आसानी से कराया जा सकेगा। चूँकि जम्मू व कश्मीर की जनता देश भक्त है भारत से उसके खून के संबंध हैं अतः वह जनमत संग्रह में भारत को ही चुनेगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक संदर्भ में भले ही हमने कश्मीर रिसायत के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से जनमत संग्रह का आश्वासन दिया है लेकिन इसमें हमारी नीयत में कभी खोट नहीं रही, हमने इस दिशा में आगे बढ़ते हुए समस्या

संयुक्त राष्ट्र को सौंप भी दी। संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद् ने अपने 13 अगस्त 1948 के प्रस्ताव द्वारा पाकिस्तान से कश्मीर की भूमि से अपनी सेनाएँ हटाने व इस खाली किए गए क्षेत्र को निगरानी व प्रबंध हेतु भारत पाक मध्यस्थता आयोग को सौंपने के लिए कहा था। इन शर्तों को पाकिस्तान द्वारा स्वीकार किए जाने की शर्त पर ही चेस्टर निमिटेज को जनमत संग्रह कराना था, पाकिस्तान ने इन शर्तों को कभी स्वीकार न कर अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी द्वारा इस संबंध में किए गए सभी प्रयासों को नाकाम कर दिया।

चूँकि जम्मू कश्मीर में संविधान सभा के निर्वाचन जनता द्वारा किए गए थे। इस संविधान सभा द्वारा न केवल महाराजा हरिसिंह द्वारा हस्ताक्षर अधिमिलन पत्र अर्थात् जम्मू कश्मीर राज्य के भारत में विलय की पुष्टि की गई है, बल्कि इसे भारत का अभिन्न राज्य घोषित करते हुए कहा गया है कि संविधान की इस धारा में कभी संशोधन नहीं हो सकता। जब जनता द्वारा निर्वाचित संविधान सभा ने जम्मू कश्मीर के भारत में विलय की पुष्टि करते हुए इसे भारत का अभिन्न अंग घोषित कर दिया तब जनमत संग्रह का आश्वासन स्वतः पूर्ण हो गया है। अब जनमत संग्रह कराने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? इस संबंध में पाकिस्तान से कोई जनमत संग्रह का वायदा तो किया नहीं गया था, फिर जिस राष्ट्र ने स्वयं अपने में बलपूर्वक मिलाए गए प्रदेशों को जनमत संग्रह का अधिकार नहीं दिया वह हमसे अर्थात् भारत से जनमत संग्रह की बात कैसे कर सकता है? इस संबंध में पाकिस्तान की माँग बेइमानीपूर्ण है व उससे उसका दोहरा चरित्र उजागर होता है।

❑

संदर्भ

1. Payarelal – Mahatma Gandhi, The last Phase Page No. 494, Najib Publishing House, Ahemadabad
2. Payarelal – Mahatma Gandhi, The last Phase Page No. 494, Najib Publishing House, Ahemadabad
3. V.P. menon, The Story of Integration of states page. 405, Orient Longmans Pvt. Ltd., Asaf Ali Rood, New Delhi
4. V.P. menon, The Story of Integration of states page. 405, Orient Longmans Pvt. Ltd., Asaf Ali Rood, New Delhi. उर्द्धत डॉ. एन.के. श्रीवास्तव भारत एवं विश्व राजनीति।
5. श्रीवास्तव एन.के., भारत एवं विश्व राजनीति, पृ. 136
6. डॉ. ओम नागपाल, भारत एवं विश्व राजनीति, पृ. 221
7. एस.के. श्रीवास्तव, भारत की विदेश नीति, पृ. 142-144

राजेंद्र

भारत में स्त्रियों की स्थिति : समाज एवं विधि

स्त्री समाज की धुरी होती है, किसी भी राष्ट्र को आगे ले जाने के लिए स्त्री का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, वास्तव में स्त्री अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए मानव को मानव कहलाने का अधिकारी बना देती है, स्त्री जननी है जो त्याग तपस्या और साधना की मूर्ति भी है। स्त्री जीवनपर्यंत साधना करती हुई अपने अमूल्य जीवन का बलिदान कर देती है किंतु इसमें कोई दो राय नहीं है कि सदियों से स्त्री का शोषण होता आया है, और उसे उपेक्षा तथा अनेक यातनाएँ सहनी पड़ी है।

स्त्री शिक्षा इस देश की महती आवश्यकता है क्योंकि स्त्री शिक्षित होगी तो पूरा परिवार शिक्षित होगा तथा समाज और पूरा देश शिक्षित होगा, शिक्षा के तेज प्रकाश से चित्त पर छाए अज्ञानता, कुसंस्कारों का कुहासा छंटता है, ज्ञान, संस्कार और सुरभि का अंकुर पनपता है तथा सुचरित्र की भित्ति सुदृढ़ होती है तथा जीवन के आयाम की व्यापकता का निरंतर विकास होता है। स्त्री चेतना का अभी भी बहुत अभाव है, जिसे शिक्षा के माध्यम से दूर किया जा सकता हैं। स्त्री चेतना से ही परिवार समाज तथा देश का विकास हो सकता है।

प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति यह थी कि ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।'' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है। प्राचीनकाल में ऋषियों ने स्त्री को बहुत आदर की दृष्टि से देखा। उन दिनों नारी को बहुत सम्मान दिया जाता था तथा गृह लक्ष्मी माना जाता था साथ ही उन्हें उच्चतम शिक्षा भी दी जाती थी। कई विदूषियाँ सभाओं में जाकर विद्वानों से शास्त्रार्थ भी करती थीं।

महान विभूतियों के पीछे यदि देखा जाए तो स्त्री का ही हाथ रहा है। महाकवि कालीदास के पीछे उनकी स्त्री की प्रेरणा जिन्होंने उनको धिक्कारा और महात्मा गाँधी के जीवन में उनकी माँ पुतलीबाई की मूल प्रेरणा कार्यरत थी। स्त्री का स्थान सर्वथा पुरुषों से प्रथम रहा है और यही कारण है कि राधेश्याम में राधिका का नाम, सीताराम

में सीता का नाम तथा गौरीशंकर में गौरी का नाम प्रथम आता है। स्त्री गृहस्थ जीवन की धुरी है, वह कई रूपों में साकार होती है माँ के रूप में, धर्मपत्नी के रूप में, अपने पति पर सर्वस्व न्यौछावर करके उसकी अनवरत् सेवा करने वाली होती है, कहीं सह धर्मचारिणी के रूप में कहीं मित्र के सदृश्य परामर्शदात्री के रूप में, कहीं सहायिका तथा सेविका के रूप में होती है।

भारतीय स्त्री का अतीत निश्चित रूप से गौरवपूर्ण था परंतु कलांतर में उनकी स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे उसकी स्थिति शोचनीय होती गई।

मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमण से हिंदू समाज का मूल ढाँचा चरमरा गया और वे परतंत्र होकर मुसलमान शासकों का अनुकरण करने लगे। स्त्री मात्र एक भोग विलास और वासना तृप्ति का साधन रह गई, लोगों ने लड़कियों को पाठशालाओं में भेजना बंद कर दिया और हिंदुओं में बाल विवाह का प्रचलन हुआ। इस प्रकार कई कुप्रथाएँ प्रचलन में आईं और स्त्री का विकास ही अवरुद्ध नहीं हुआ बल्कि धीरे-धीरे उन्हें अवनति की ओर उन्मुख होना पड़ा। स्त्री इस प्रकार अपनी स्वतंत्रता नष्ट करके मात्र दासी या भोग विलासिता की वस्तु बनकर रह गई।

स्त्री के अधिकारों को छीना जा रहा था, उनके ऊपर कई प्रकार से वज्राघात हो रहे थे, बाल विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा जैसी कई कुप्रथाएँ अस्तित्त्व में आने लगी थीं और इसी के साथ सामाजिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, डॉ. बी.आर. अंबेडकर एवं अन्य कई समाज सुधारकों ने इस प्रकार की प्रथाओं का विरोध किया।

आधुनिक युग के बदलते परिवेश में, विधि एवं विधिक अधिकारों की प्रासंगिकता एवं उसके प्रति सजगता सामाजिक जीवन का एक आवश्यक पहलू है। आज कंप्यूटर के इस युग में न केवल चेतन समाज के लिए अपितु पेड़, पौधे एवं पर्यावरण अधिकारों के लिए कानून बना दिए गए हैं। लेकिन सदियों से विधि की परिधि में स्त्री केवल व्यावहारिक कानूनों के सहारे अपने जीवन का अंत कर लेती है।

आजादी के बाद स्त्री अधिकारों की रक्षा के लिए विधिक स्तर पर सर्वाधिक प्रयास हुए हैं, लेकिन उसके विपरीत स्त्री उत्पीड़न के मामलों में कहीं उससे अधिक वृद्धि हुई है, एक पीड़ित, प्रताड़ित स्त्री उस स्थिति को अपनी नियति मानकर पीड़ा को सहने और जीवन को बद-से-बदतर जीने के लिए बाध्य हो जाती है।

इसलिए स्त्री के अधिकारों के संरक्षण में बनाए गए विधि से वह समाज में दोषियों को सजा दिलाने के साथ एक मानव की तरह सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकती है। एक समाजरूपी रथ स्त्री पुरुष दोनों पहियों पर गतिमान रहता है, यदि एक पहलू भी दुर्बल हुआ तो रथ की गतिशीलता कुप्रभावित होगी। अतः आज आवश्यकता इस बात की है

कि पुरुष के साथ-साथ स्त्री को भी जागरूक बनाया जाए, स्त्री और पुरुष में कोई भेद न किया जाए, स्त्री को अपने अधिकारों का बोध कराया जाए तथा इस योग्य बनाया जाए कि वह अपने अधिकारों से सुसज्जित होकर स्वयं अपने आपकी रक्षा करे तथा अन्याय, उत्पीड़न आदि कुरीतियों का विनाश करें। इन्हीं भावनाओं को साकार करने की दिशा में स्त्रियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु अनेक विधियाँ बनाई गई हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों की भूमिका बहुत अहम हो चुकी है। उसे सभी प्रकार के अधिकार उपलब्ध कराए जा रहे हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 के अंतर्गत लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद को मना किया गया है, अनुच्छेद 16 के अंतर्गत नौकरी में सभी को समान दर्जा प्राप्त है। अनुच्छेद 23 तथा 24 के अंतर्गत किसी भी प्रकार के शोषण को मना किया गया है। अनुच्छेद 39क के अंतर्गत मुफ्त विधिक सहायता दी जाने की बात की गई है।

इसी प्रकार अनुच्छेद 44 के अंतर्गत समरूप विधिक संहिता, अनुच्छेद 51 के अंतर्गत कर्त्तव्य तथा अनुच्छेद 243 के अंतर्गत स्त्रियों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

संविधान के साथ-साथ स्त्री के जीवन स्तर को उन्नत एवं विकसित करने के लिए कई अन्य अधिनियम निर्मित किए गए हैं जो निम्नलिखित हैं :--

- विशेष विवाह अधिनियम, 1954
- हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
- अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956
- हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
- दहेज प्रतिरोध अधिनियम, 1961
- प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961
- गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971
- सती (निवारण) अधिनियम, 1987, 1988
- वर्ष 1990 में स्त्रियों के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया।

आज आवश्यकता इस बात की है कि स्त्रियों के अधिकारों के संरक्षण में बने सभी विधियों को सही ढंग से लागू किया जाए, स्त्रियों के प्रति समाज की सोच में परिवर्तन से ही मानवता, समाज एवं राष्ट्र का भला हो सकता है। ऐसी ही विचारधारा महान विधि शास्त्री 'सैविनी' ने भी 'लोक चेतना' का सिद्धांत प्रतिपादित करके दी है, अर्थात् नियमों एवं कानूनों को बना देने मात्र से किसी अव्यवस्था को समाप्त नहीं किया जा सकता है, जब तक कि मानव स्वयं उसको समाप्त करने के प्रति जागरूक न हों। इस प्रकार स्त्रियों के विरुद्ध हो रहे अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न एवं कुप्रथाओं को विधि के साथ-साथ लोक चेतना के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है।

❑

रिंकू गंगवानी

महिला अधिकार एवं कानूनी प्रावधान

सदियों से चली आ रही नारी की स्थिति आज भी सशक्तिकरण की मोहताज है। महिला सशक्तिकरण के विषय पर चर्चा का विषय कोई नया नहीं है पर आज भी ये विषय ख़ुद में एक सवाल बन कर रह गया है कि क्या इतनी चर्चा के बाद भी महिला सशक्त है या अपने ही अधिकारों के प्रति मोहताज है? महिलाओं के विरुद्ध अपराधों ने दिन दोगुनी रात चौगुनी तरक्की की है, यह बात सही है परंतु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि आज उनसे जुड़ी हर समस्या पर संसद द्वारा उनके लिए एक नया विधान बनाया गया या मौजूदा विधान में संशोधन किए गए। इसमें भी कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि क़ानून हमारी सुरक्षा के लिए बनाए गए परंतु उनका भरपूर दुरुपयोग भी हुआ। परंतु हम यहाँ यह बताना चाहेंगे कि क़ानून का दुरुपयोग तो दूर बल्कि उनका उपयोग ही ठीक से नहीं किया गया।

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध : एक नजर में

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध वास्तव में वर्तमान का सबसे चर्चित मुद्दा है। हम आज़ादी के 70वें वर्ष में होते हुए भी अब तक आज़ाद नहीं हैं -- विशेषकर महिलाएँ। आज उन्हें हर क़दम पर आगे बढ़ने के लिए पिता की या उसके पति के सहारे की आवश्यकता पड़ती ही है और वास्तव में ये दो उसके जीवन के ऐसे मज़बूत स्तंभ होते हैं जो उसका अस्तित्व बदल सकते हैं। महिलाओं के प्रति हिंसा या अपराध एक बहुत ही विस्तृत विषय है क्योंकि वह घर में भी प्रताड़ित होती है और समाज में भी, इसलिए महिलाओं के विरुद्ध अपराध का विषय एक 'घरेलू हिंसा' संबंधी विषय भी है और यह एक सामाजिक अपराध भी है और इसी कारण से यह एक गंभीर विषय है जिसका समाधान अत्यावश्यक है।

महिलाओं के प्रति अपराध और उनसे जुड़े क़ानूनी प्रावधान

कानून के अंतर्गत महिलाओं के प्रति अपराधों को दो भागों में बाँटा जा सकता है --

(1) भारतीय दंड संहिता में वे सभी अपराध आएँगे जिनको भारतीय दंड संहिता में अपने अधीन परिभाषित किया हुआ है और जिन पर दंड संहिता में प्रावधान बनाए गए हैं।

(2) स्थानीय या विशेष विधि में वे सभी विधियाँ आएँगी जो उस स्थान विशेष के लिए एक विशेष अपराध पर बनाई गई हो।

इनका विस्तृत अध्ययन इस प्रकार है। भारतीय दंड संहिता में हालाँकि महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों की सूची काफ़ी विस्तृत है और भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के प्रति होने वाले सभी गंभीर अपराधों की सूची समाविष्ट है; इसके अतिरिक्त दंड संहिता में समय-समय पर संशोधन भी किए गए हैं। जैसे, निर्भया कांड के बाद जब बलात्कार संबंधी क़ानून को और अधिक कठोर बनाने की आवश्यकता महसूस हुई तो तुरंत वर्मा कमेटी ने इस पर निर्णय लिया और 2013 में दंड संहिता का संशोधित रूप हमारे सामने आया। महिलाओं के प्रति अपराध व उनसे जुड़े क़ानूनी प्रावधान इस प्रकार हैं --

(1) **कन्या भ्रूण हत्या :** महिलाओं के प्रति अपराध तब से ही शुरू हो जाता है जब से वह अस्तित्व में आती है; ऐसा इसलिए क्योंकि पहला अपराध किसी महिला के विरुद्ध होगा 'कन्या भ्रूण हत्या' जो कि अत्यंत सामान्य तौर पर किया जाने वाला किंतु जघन्य अपराध है। यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि इस गंभीर अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता में भी प्रावधान है और विशेष विधि में भी इस अपराध के लिए प्रावधान किया गया है।

यह अपराध इतना गंभीर है कि इसके लिए एक से ज़्यादा विधियों में प्रावधान है। इतना गंभीर अपराध और हम यह भी जानते हैं कि कितनी निर्ममता से कारित किया जाता है फिर भी पुलिस रिपोर्ट दर्ज़ नहीं। क्या ऐसे जघन्य अपराध के विरुद्ध कोई रिपोर्ट दर्ज़ नहीं हुई होगी? क्या इस 'शांत आतंकवाद' के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी? क्या हमेशा ही क़ानून के होते हुए एक मासूम की चीखों को अनसुना किया जाएगा? यह कृत्य अपराध ही नहीं बल्कि अनैतिक भी है।

गर्भपात निषेध कानून

भारतीय दंड संहिता की धारा 312 से 318 तक गर्भपात निषेध संबंधी क़ानून दिए गए हैं और उनके लिए दंड के प्रावधान भी दिए गए हैं जिसमें गर्भपात कारित

करने के लिए अधिकतम सात वर्ष तक के दंड का प्रावधान है। शिशु के जीवित पैदा होने के बाद उसका परित्याग कर दिए जाने से संबंधित प्रावधान भी इनमें दिए गए हैं फिर भी ऐसी घटनाएँ प्रायः देखने को मिल जाती है जिनमें कन्या का जन्म होने पर उसके माता-पिता द्वारा उसे निर्जन स्थान पर त्याग दिया जाता है।

भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के अतिरिक्त इस विषय पर गर्भधारण से पूर्व या उसके पश्चात् लिंग चयन के वर्जन के लिए और आनुवांशिक असामान्यताओं या मेटाबोलिक असामान्यताओं या गुणसूत्रीय असामान्यताओं या अमुक जन्मजात विकृतियाँ या लिंग से जुड़ी विकारता का पता लगाने के प्रयोजनों के लिए प्रसव पूर्व निदान तकनीक के विनियम के लिए और महिला भ्रूण होने वाले लिंग निर्धारण के लिए उनके दुरुपयोग के निवारण के लिए और उससे जुड़े तथा उसके आनुवांशिक मामलों के लिए उपबंध करने के लिए संसद ने 20 सितंबर, 1994 को गर्भधारण पूर्व आर प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग निर्धारण का वर्जन) अधिनियम, 1994, The (Pre-concepion and pre-Natal Diagnostic Techniques Prohibition of Sex Selection) Act, 1994 पास किया।

गर्भ में यह जानने के लिए कि भ्रूण लड़का है या लड़की, परीक्षण करवाया जाना वर्जित है, ऐसी तकनीक या परीक्षण स्थल का विज्ञापन करवाया जाना भी वर्जित है और परीक्षण में शामिल चिकित्सक एवं सहयोगी दंड के भागी हैं। गर्भपात कराया जाना भी अपराध है, कुछ विषम परिस्थितियों में ही क़ानून गर्भपात की अनुमति देता है, वह भी सिर्फ़ तब जबकि माँ की जान को ख़तरा हो या फिर माँ की शारीरिक बनावट गर्भधारण योग्य न हो या फिर गर्भ बलात्कार के कारण रुका है। गर्भपात हेतु महिला की सहमति आवश्यक है, स्त्री की सहमति के बिना कराए गए गर्भपात हेतु दंड दस वर्ष तक का हो सकता है।

(2) दहेज प्रताड़ना

महिलाओं के प्रति दूसरा और सबसे गंभीर अपराध है -- 'दहेज प्रताड़ना'। दहेज प्रथा प्राचीन समय से चलते आ रहे 'कन्यादान' का ही परिवर्तित और 'बाध्यकारी' स्वरूप है। वैदिक काल में जो भेंट और उपहार या कोई राशि स्नेहवश स्वैच्छिक रूप से अपनी पुत्री को विवाह के दौरान दी जाती थी उसी का एक गंभीर रूप है -- 'दहेज प्रथा'। वर्तमान में 'दहेज' लेना और देना समाज में विवाह का एक अभिन्न अंग बन गया है जिसे उच्च वर्ग में 'Status Symbol' के रूप में देखा जाने लगा है।

दहेज संबंधी इस बुराई को रोकने के लिए संसद ने 20 मई, 1961 को दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (Dowry Prohibition, Act 1961) पारित किया जिसमें दहेज लेना और देना दोनों ही कार्य दंडनीय घोषित किए गए और जिसके लिए 6 माह से

2 वर्ष तक के कारावास व 10,000 रुपए जुर्माने का प्रावधान किया गया है।

यह अधिनियम इतनी गंभीर समस्या से लड़ने के लिए पर्याप्त न था और आगे चल कर इस बुराई ने क्रूरता, हिंसा, पारिवारिक कलह और बढ़ा दिया, क्योंकि समय के साथ दहेज नामक बुराई ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। परिवार में पत्नी पर दहेज के लिए क्रूरता का व्यवहार किया जाने लगा जिसके लिए संसद ने 1983 में भारतीय दंड संहिता में संशोधन कर एक नया अध्याय XX-A(20-क) जोड़ा, जिसमें एक मात्र धारा '498-ए' जोड़ी गई जिसके अंतर्गत किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना, जिसके लिए तीन वर्ष के कारावास और जुर्माने का प्रावधान दिया गया।

समय के साथ क्रूरता इतनी बढ़ गई कि इसका एक और उग्र रूप हमारे सामने आया और 'दहेज प्रथा' नामक शब्दावली हमारी जानकारी में आई, और आए दिन होने वाली नव वधू की हत्याओं से यह पता लगाना मुश्किल हो गया कि ये 'दहेज हत्या' है या दहेज के लिए उकसा कर की गई 'आत्महत्या'। इन स्थितियों से लड़ने के लिए और बढ़ती दहेज मृत्यु की संख्या में निरंतर वृद्धि से निपटने के लिए 1986 के संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा '304-बी' में 'दहेज मृत्यु' को एक भिन्न अपराध माना और विधान में पहली बार इसके लिए प्रावधान दिया गया। धारा '304-बी' में यह प्रावधान किया गया कि जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु जलने पर या शरीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्षों में असाधारण परिस्थितियों में हो जाती है और यह साक्ष्य दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा दहेज की किसी माँग के लिए क्रूरता का बर्ताव किया था तो ऐसी मृत्यु 'दहेज मृत्यु' कहलाएगी तथा ऐसा पति या पति का नातेदार मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा। इसके लिए सात वर्ष से आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान किया गया।

इसके अतिरिक्त भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में दहेज मृत्यु से संबंधित दो उपधाराएँ भी जोड़ी गईं -- धारा 113-ए और 113-बी।

धारा 113-ए : भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, किसी विवाहित स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में उपधारणा का प्रावधान करती है जिसमें यह प्रावधान दिया गया है कि जब न्यायालय के सामने यह प्रश्न हो कि क्या किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या करना उसके पति या पति के नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया है और यह साक्ष्य भी दर्शित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी और यह कि उसके पति या पति के नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी, तो न्यायालय मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह उपधारणा कर सकेगा

कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा दुष्प्रेरित की गई थी।

धारा 113-बी : दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि जब न्यायालय के सामने यह प्रश्न है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की 'दहेज मृत्यु' कारित की है और साक्ष्यों द्वारा यह भी दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ समय पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी माँग के लिए या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी।

किसी विशेष समस्या के लिए क़ानून में इतने प्रावधान रखने पर भी दहेज मृत्यु की समस्या कम नहीं हुई बल्कि राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों के मुताबिक दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 में दर्ज़ मुकदमों की कुल संख्या 2013 में 10,709 थी जो 2014 में 10,050 रह गई। यदि आँकड़ों की मानें तो यह अपराध 6.2 प्रतिशत की दर से घटा है परंतु यह सत्य नहीं है ऐसा इसलिए क्योंकि इसके और गंभीर परिणाम हमारे सामने आए हैं। दहेज हत्या के 2013 में 8,083 मामले थे जो 2014 में 4.6 प्रतिशत की दर से बढ़ कर 8,455 हो गए। तो जब अपराध का गंभीर स्वरूप हमारे सामने है और जिसका परिणाम दहेज को लेकर मृत्यु के रूप में देखने को मिलता है तो कोई व्यक्ति दहेज प्रतिषेध अधिनियम में अपराध को दर्ज़ क्यों करवाएगा? इसके अतिरिक्त क्रूरता के अपराध के मामले जो 2009 में 89,546 थे जो 2010 में 94,041 हुए जो कि 2014 में बढ़ कर 2,22,977 हो गए। इतनी तीव्र गति से तो विकास दर भी वृद्धि नहीं करती जितनी तीव्र गति से भारत में महिलाओं के प्रति अपराध बढ़े हैं।

हाल ही में दहेज हत्या के बढ़ते हुए मामलों को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने **कृष्णा भट्टाचार्य बनाम सारथी चौधरी** के नवीन मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि स्त्रीधन पर सिर्फ़ उस महिला का अधिकार होगा, उसके पति का नहीं। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि पत्नी चाहे न्यायिक अलगाव के चलते पति से अलग रह रही हो, स्त्री धन पर पत्नी का अधिकार बना रहेगा, साथ ही दावा जारी कर स्त्री धन वापस लेने का हक़ भी बना रहेगा। विश्वास हनन के अपराध के कारण एक तय सीमा में न दायर करने के आधार के बाद भी स्त्री धन वापसी का महिला का दावा रद्द नहीं किया जा सकता।

महिलाओं के कुछ अन्य क़ानूनी अधिकार

(3) अम्ल (Acid) फेंकना (Acid Attack)

किसी महिला के प्रति अपराधों के विषय में अगला गंभीर अपराध है 'अम्ल' फेंक कर घोर उपहति कारित करना या 'एसिड अटैक'। इस तरह के अपराध इन दिनों समाज

में बहुत देखने को मिल रहे हैं। ऐसे अपराधी न केवल शरीर पर घिनौना प्रहार करते हैं बल्कि यह एक आत्मा पर प्रहार है क्योंकि इस प्रकार के अपराधों से न केवल शरीर झुलसता है बल्कि आत्मा भी झुलस जाती है और महिला अपना आत्म-सम्मान खो देती है। इस प्रकार के मामलों के लिए 2013 के संशोधन द्वारा धारा 326-ए और 326-बी दंड संहिता में शामिल कर पहली बार 'एसिड अटैक' को एक पृथक् अपराध का दर्ज़ा दिया गया और यह प्रावधान किया गया कि जो कोई व्यक्ति अम्ल फेंक कर इस धारा के अनुसार क्षति कारित करता है वह दस वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक दंडनीय होगा। 2013 से लेकर अब तक इस प्रकार के मामलों को राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा दर्ज़ नहीं किया गया है।

(4) स्त्री की लज्जा भंग

महिलाओं के विरुद्ध अपराध के क्रम में अगला अपराध है -- 'स्त्री की लज्जा भंग' करना। इस प्रकार के अपराधों के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 356 में प्रावधान दिया गया है -- स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग जिसके लिए एक वर्ष से पाँच वर्ष तक के दंड का प्रावधान है। यहाँ राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों के मुताबिक 2009 में इस प्रकार के 38,711 मामले भारत में दर्ज़ किए गए थे जो 2010 में बढ़ कर 40,613 हुए जिनमें 2011 में 42,968 अपराधों की बढ़ोत्तरी दर्ज़ की गई, 2012 में 45351, 2013 में 70,739 और 2013 में 82,335 इन अर्थों में 2013 से 2014 क बीच इस प्रकार के अपराधों में 16.3 प्रतिशत वृद्धि दर्ज़ की गई।

यहाँ यह नोट करना आवश्यक है कि 2013 में इस धारा में संशोधन किया गया और इस धारा में छेड़खानी से संबंधित अपराधों को लेकर कुछ अन्य उपधाराएँ जोड़ी गई और 2013 के संशोधन से पहले इसमें दंड का प्रावधान सिर्फ़ एक वर्ष था जो कि 2013 में बढ़ कर एक से पाँच वर्ष कर दिया गया तो भी 2013 से 2014 में यह अपराध 16.3 की दर से बढ़ा। इन अर्थों में यह समझा जा सकता है कि सिर्फ़ कठोर दंड विहित करना ही काफ़ी नहीं, उसे कठोरता से लागू करना भी आवश्यक है।

(5) घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा मानव अधिकारों का एक मुद्दा है। भारत में घरेलू हिंसा की घटनाएँ व्यापक रूप से प्रचलित है, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में यह अदृश्य रही है क्योंकि इस प्रकार की हिंसा घर की चार दीवारी के भीतर ही अधिकतर घटित होती हैं। इस अधिनियम से पहले इस प्रकार की घटनाएँ भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क से सुलझाई जाती

थी। परंतु धारा 498-क के प्रावधान में कुछ कमियों के कारण घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 अस्तित्व में आया।

अधिनियम की धारा 3 में घरेलू हिंसा की परिभाषा दी गई है जिसमें प्रत्यर्थी का ऐसा कोई कृत्य जो शारीरिक, मानसिक, लैंगिक या आर्थिक रूप से व्यथित व्यक्ति को प्रताड़ित करने वाला हो, घरेलू हिंसा के अंतर्गत आएगा। आर्थिक रूप से तंग करने में विधि विरुद्ध दहेज की माँग के रूप में महिला या उसके संबंधियों को तंग करने को भी इस परिभाषा के अंतर्गत शामिल किया जाएगा।

यह अधिनियम पूर्णतया महिला केंद्रित है, क्योंकि यह पहला ऐसा अधिनियम है जिसमें 'व्यथित व्यक्ति की परिभाषा जो कि धारा 2(क) में दी गई है, सिर्फ़ एक महिला को ही लिया गया है। अर्थात् महिला ही इसमें व्यथित व्यक्ति की परिभाषा के अंतर्गत आएगी, कोई पुरुष नहीं।

इस अधिनियम की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें कोई भी महिला घरेलू हिंसा का दावा कर सकती है कि प्रत्यर्थी पुरुष व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में रह रही हो और उस पुरुष ने ऐसा घरेलू हिंसा का कृत्य किया हो। इस अर्थ में धारा 2(च) में 'घरेलू संबंध' को परिभाषित किया गया है जिसमें ऐसा संबंध जिसमें वे दो पक्षकार किसी साझे गृह में किसी भी प्रकार से संबंधित हों या रह रहे हों। यहाँ परिभाषा में यह उपबंधित है कि ऐसा संबंध विवाह अथवा विवाह की प्रकृति का कोई संबंध हो, इन शब्दों से स्पष्ट है कि क़ानून बिना विवाह के साथ रहने को भी अप्रत्यक्ष मान्यता दे रहा है। यहाँ यह भी नोट करना आवश्यक है कि महिला घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005 में लागू हुआ परंतु इतने वर्षों में पहली बार राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा इसके आँकड़े 2014 में लिए गए। इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि घरेलू हिंसा के दर्ज़ मामले कुल 426 ही हैं, जो कि अपराध की वर्तमान स्थिति से काफ़ी कम प्रतीत होते हैं।

(6) महिलाओं के कुछ अन्य कानूनी अधिकार

1. एक महिला की गिरफ्तारी एक महिला पुलिस अधिकारी या पुलिसकर्मी ही कर सकती है।
2. न्यायालय में महिला की गवाही के दौरान उससे अशिष्ट या अश्लील प्रश्न नहीं पूछे जा सकते। बलात्संग के मामले में उसका निवारण 'कैमरा विचारण' ही होगा।
3. अवैध संतान की प्रथम नैसर्गिक संरक्षक उसकी माँ है।
4. महिला श्रमिक को खानों में नीचे नहीं उतारा जा सकता।
5. महिला का शारीरिक चिकित्सकीय परीक्षण महिला चिकित्सक की उपस्थिति में ही होगा।

6. 6 वर्ष की आयु तक बच्चे की संरक्षकता का प्रथम अधिकार माँ को है।
7. आयकर में महिलाओं को विशेष छूट प्रदान की गई है।
8. थाने पर किसी महिला का कथन लेखबद्ध करने हेतु उस महिला को सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व नहीं बुलाया जा सकता।

(7) मूल्यांकन व सुझाव

एसईडब्ल्यूए से संबद्ध और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण पर संयुक्त राष्ट्र महासचिव के उच्च स्तरीय पैनल की सदस्य रेनाना झावला का कहना है कि ''महिलाओं का कार्य अदृश्य होता है... महिलाएँ आर्थिक स्तंभ का आधार होती हैं, महिलाएँ अल्प प्रौद्योगिकी, अल्प उत्पादकता, अल्प कौशल, अल्प आय और अल्प प्रतिष्ठा की दलदल में फँसी है।'' इस प्रकार महिलाएँ घरेलू ग्रामीण, अन्य हर क्षेत्र में अपना एक महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं, परंतु उनके योगदान को हर जगह बहुत कम आँका जाता है।

हर जगह महिला अधिकारों की बात होने पर यही बताया जाता है कि महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार है और यही बात भारतीय संविधान का अनुच्छेद-14 भी स्वीकार करता है जो 'कानून के समक्ष समानता' को स्वीकार करता है। यदि ये बात सत्य है तो पुरुष समाज की मानसिकता को बदल कर 'महिला प्रधान समाज' क्यों नहीं कहा जा सकता? कहा जा सकता है जगत् जननी है वो, उसे माँ का दर्ज़ा प्राप्त है, अपने परिवार की आत्मा है वो, फिर एक माँ को मंदिर में जाने की मनाही क्यों है? महिला के अधिकारों के बारे में इससे हास्यास्पद बात कोई नहीं हो सकती कि एक मुस्लिम पुरुष यदि अपनी पत्नी के सामने तीन बार तलाक़ शब्द का उच्चारण कर दे, तो वहीं उसके सारे अधिकार समाप्त हो जाएँगे। फिर कहाँ से समानता का अधिकार? क्या यह भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति है जिसे मात्र तीन बार शब्द उच्चारित करके अधिकार से वंचित किया जा सकता है?

महिलाओं के प्रति होने वाले अपराध में 2010-2014 तक 11.4 प्रतिशत वृद्धि हुई है, और साथ ही हमारे पास हर अपराध के लिए क़ानून भी है, बस उसे लागू करने की आवश्यकता है, महिलाओं में उसकी जानकारी की आवश्यकता है। क़ानून हमेशा नागरिकों की सुरक्षा के लिए बनाया जाता है, दुरुपयोग के लिए नहीं। इसके दुरुपयोग के लिए कठोर दंड का प्रावधान किया जाना चाहिए।

महिला थानों को महिला सलाहकारी केंद्र का नाम दिया जाना चाहिए, जिससे कि अपराध के ख़िलाफ़ रिपोर्ट दर्ज़ करवाते समय घर-परिवार की या ख़ुद की इज्जत का भय न हो।

अपराध के लिए रिपोर्ट दर्ज़ करवाते समय ऐसी व्यवस्था हो कि किसी को भी

इस तथ्य की जानकारी न हो कि रिपोर्ट किसने दर्ज़ करवाई अर्थात् पीड़ित महिला की पहचान का प्रकटन न हो।

महिलाओं को छोटे स्तर से ही कार्य करने व स्वावलंबी बनने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, जिससे देश की हर महिला स्वावलंबी हो सके, जिससे अपराध के स्तर में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त एक महिला को सशक्त करने में और उसके प्रति होने वाली हिंसा को रोकने में उसके परिवार के सदस्यों का भावनात्मक सहयोग भी आवश्यक है। यदि उसके परिवार के सदस्य उसे समझते हैं और उसका सहयोग करते हैं तो कई प्रकार के बढ़ते अपराधों को रोका जा सकता है।

❑

संदर्भ

1. भारतीय दंड संहिता, 1860, टी. भट्टाचार्य।
2. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, रतनलाल धीरज लाल
3. दैनिक भास्कर, (नॉलेज भास्कर), क़ानून और अधिकार
4. Indian Express, 10 March, 2016
5. The Hindu, 25 Feb, 2016
6. www.rojgarsmachar.gov.in

कविता

डॉ. प्रतिष्ठा श्रीवास्तव

माँ

स्वास्तिक का हर चिह्न है माँ।
वे का इक मंत्र है माँ।
मंत्र की एक अनुगूँज है माँ।
अुगूँज जो अव्यक्त है।
अव्यक्त की अभिव्यक्ति है माँ।।

डॉ. निशा केवलिया शर्मा

संयुक्त राष्ट्र संघ, महिलाएँ और मानव अधिकार : एक अध्ययन

वर्तमान समय में मानव अधिकार के महत्त्व को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक रूप से स्वीकारा गया है। मानवीय गरिमा तथा उसके सम्मान को मान्यता देना आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक महान् उपलब्धि है। संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके विशिष्ट अभिकरणों द्वारा अंगीकृत विभिन्न घोषणाओं में यह कहा गया है कि उनके सदस्य मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताओं के सार्वभौमिक सम्मान की अभिवृद्धि करने और उनका अनुसरण करने के लिए स्वयं वचन देते हैं।

मानव अधिकारों का अर्थ : लॉस्की का कथन है कि ''अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना आमतौर पर कोई व्यक्ति सर्वोत्तम रूप पाने की आशा नहीं कर सकता।'' डी.डी. बसु के अनुसार ''मानव अधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी अन्य विचारण के मानव परिवार का सदस्य होने के फलस्वरूप राज्य या अन्य लोक प्राधिकारी के विरुद्ध धारण करना चाहिए।''

मानव अधिकार का विचार मानव गरिमा से संबंधित है। अतः ऐसे सभी अधिकारों को मानव अधिकार कहा जा सकता है जो मानवीय गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। ये अधिकार मनुष्य के अस्तित्व के कारण ही उससे संबंधित रहते हैं अतः वे जन्म से ही उसमें विहित हैं और ये सभी व्यक्तियों के लिए होते हैं चाहे उनका मूलवंश, धर्म, लिंग तथा राष्ट्रीयता कुछ भी हो। ये अधिकार सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि ये उनकी गरिमा एवं स्वतंत्रता के अनुरूप हैं तथा शारीरिक, नैतिक, सामाजिक और भौतिक कल्याण के लिए सहायक होते हैं। इन अधिकारों के बिना सामान्यतः कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। मानव जाति के लिए मनुष्य अधिकारों का अत्यंत महत्त्व होने के कारण मानव अधिकार

को कभी कभी मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, अंतर्निहित अधिकार और जन्माधिकार भी कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ और मानवाधिकार' सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में यह आवश्यकता महसूस की गई थी कि संयुक्त राष्ट्र को अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय बिल प्रस्तुत करना चाहिए, परंतु ऐसा नहीं किया जा सका। लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों द्वारा इस बात की आवश्यकता महसूस की गई थी कि युद्ध की विभीषिका का उन्मूलन करने में सहयोग करना अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की बाध्यता होनी चाहिए। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में मानव अधिकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया।

यद्यपि मानव अधिकारों की व्यवस्था अपने आप में कोई नया अविष्कार नहीं था यह सदियों के विकास का परिणाम है। संघ की स्थापना के पूर्व भी अनेक महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ, अधिनियमों आदि द्वारा मानव अधिकारों को मान्यता दी जा चुकी थी।[1] 1215 के मैग्नाकार्टा, 1676 के बंदी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम, 1683 के बिल ऑफ राइट्स, 1776 के अमेरिकी स्वातंत्र्य घोषणा एवं 1789 की मानव अधिकार की फ्रांसीसी घोषणा को हम मानव अधिकारों की मान्यता के महत्त्वपूर्ण स्तंभ के रूप में देख सकते हैं। लेकिन सार्वभौमिक मान्यता में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के महत्त्व को स्वीकार करना ही होगा। चार्टर की प्रस्तावना अनुच्छेद 1, 13(1)(ख), 55, 56, 62(2), 68 और 76(ग) में मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं की अभिवृद्धि के लिए प्रावधान शामिल किए गए हैं जो इस प्रकार हैं --

1. चार्टर की उद्देशिका अपने प्रथम परिच्छेद में यह अभिकथित करती है कि संयुक्त राष्ट्र के लोग मूल मानव अधिकारों के प्रति, मानव के गरिमा और महत्त्व के प्रति, पुरुषों और स्त्रियों तथा बड़े और छोटे राष्ट्रों के समान अधिकारों के प्रति निष्ठा को पुनः अभिपुष्ट करने के लिए दृढ़ निश्चित हैं।
2. चार्टर के अनुच्छेद के परिच्छेद 3 में...मूलवंश, लिंग भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना है।
3. संयुक्त राष्ट्र के दो अंगों, महासभा तथा आर्थिक और सामाजिक परिषद् को मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताओं में अभिवृद्धि करने का कार्य सौंपा गया है। अनुच्छेद 13 द्वारा, महासभा को मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं को प्राप्त करने में सहायता करने के प्रयोजन के लिए अध्ययन करने तथा सिफ़ारिश करने के लिए

सशक्त किया गया है।

4. अनुच्छेद 55 के अनुसार संयुक्त राष्ट्र
   (अ) उच्चतर जीवन स्तर पूर्ण नियोजन और आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति के लिए अभिवृद्धि करेगा।
   (ब) अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य विषयक और संबद्ध समस्याओं के हल तथा अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शैक्षणिक सहयोगी की अभिवृद्धि करेगा।
   (स) मूलवंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति विश्वव्यापी आदर और उनके पालन की अभिवृद्धि करेगा।
5. अनुच्छेद 56 के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य अनुच्छेद 55 में उपवर्णित प्रयोजनों की पूर्ति के लिए संगठनों के सहयोग से संयुक्त या पृथक् रूप से कार्यवाही करने की प्रतिज्ञा करते हैं।
6. अनुच्छेद 62 के अनुसार आर्थिक और सामाजिक परिषद् को मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर बढ़ाने के प्रयोजन से और उनके पालन के लिए सिफ़ारिशें करने के लिए सशक्त करता है।
7. अनुच्छेद 68 आर्थिक और सामाजिक परिषद् को आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में मानव अधिकारों की अभिवृद्धि के लिए आयोग तथा ऐसे अन्य आयोगों को स्थापित करने का निर्देश देता है, जिसको वह अपने कार्यों का पालन करने के लिए आवश्यक समझता हो।
8. अनुच्छेद 76 का परिच्छेद (ग) यह प्रावधान करता है कि न्यासित प्रणाली के मूल उद्देश्यों में से एक मूल वंश, लिंग, भाषा और धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के सभी के लिए मानव अधिकारों के प्रति और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर को प्रोत्साहित करना और विश्व के लोगों को एक-दूसरे पर आश्रित होने की मान्यता के लिए प्रोत्साहन देना है।

उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त बारंबार मूलभूत मानव अधिकार मानव के मूल्य की गरिमा, समान अधिकार, न्याय, सामाजिक उन्नति एवं मूलभूत स्वतंत्रता की अवधारणा को भी संदर्भित किया गया है। आत्म निर्णय के विषय में भी तीन अध्याय हैं।

''चार्टर मानव अधिकारों एवं मूलभूत स्वतंत्रताओं को पारित एवं प्रेक्षण के प्रति समर्पित है। जब तक हम सभी पुरुष एवं महिलाओं के लिए हर जगह मूलवंश, भाषा अथवा धर्म पर बिना ध्यान दिए हुए इन उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर लेते हैं, विश्व में स्थायी शांति एवं सुरक्षा की प्राप्ति नहीं हो सकती।''[2]

मानव अधिकार एवं महिलाएँ : संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख अंग आर्थिक और सामाजिक परिषद् मानव अधिकारों के प्रश्न से सीधे संबंधित है। परिषद् को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 68 के अधीन मानव अधिकारों की अभिवृद्धि के लिए आयोगों की स्थापना के लिए सशक्त किया गया है। अतः परिषद् ने इसी के अनुसार महिलाओं की स्थिति को मज़बूत करने हेतु आयोग की स्थापना 1946 में की।

यह आयोग एक क्रियात्मक आयोग है। इसकी सदस्यता आरंभ में 15 थी जो 1961 में 21 कर दी गई। 1991 में आयोग के 45 सदस्य हो गए। आयोग वर्ष में दो बार वियना में संपूर्ण विश्व में महिलाओं की समानता के प्रति उन्नति का परीक्षण करने के लिए बैठक करता है। इसका प्रमुख कार्य सिफ़ारिशें करना और महिलाओं के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में महिलाओं के अधिकारों की अभिवृद्धि के लिए रिपोर्ट तैयार करना एवं आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् की सिफ़ारिश करना है।

आयोग ने 1949 में महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों के अभिसमय पर कार्य करना आरंभ किया। यह अभिसमय महिलाओं के अधिकारों के संबंध में प्रथम विधिक लिखित था जो महासभा द्वारा 1952 में अंगीकार किया गया। आयोग ने 1979 में भी महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति हेतु अभिसमय को अंगीकार करने में भी मदद की थी। 1957 में विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता पर अभिसमय को अंगीकार करवाया। इनके अतिरिक्त भी आयोग ने महिलाओं के क्षेत्र में भी कार्य किया।

महासभा[3] ने 7 नवंबर 1967 को महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्ति की घोषणा की। 1979 को अंगीकृत अभिसमय महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर 1981 को प्रवृत्त हुआ और 6 अगस्त 2013 तक इसके सदस्यों की संख्या 187 हो गई। अभिसमय में विभिन्न अनुच्छेदों में भेदभाव को नियंत्रित करने हेतु उपबंध किए गए हैं -- जैसे 1. शिक्षा (अनुच्छेद 10), 2. नियोजन (अनुच्छेद 11) 3. स्वास्थ्य सुरक्षा (अनुच्छेद 12) 4. आर्थिक तथा सामाजिक जीवन (अनुच्छेद 13) 5. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ (अनुच्छेद 14) 6. विधि के समक्ष समानता (अनुच्छेद 15) 7. विवाह तथा परिवार संबंध (अनुच्छेद 16) आदि।

महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति पर 6 अक्टूबर, 1999 को महिलाओं के लिए व्यक्तिगत परिवाद की जो कमी रह गयी थी उसे दूर करने के लिए अभिसमय पर ऐच्छिक नयाचार को अंगीकार किया, जिसमें लैंगिक भेदभाव, यौन-शोषण एवं अन्य दुरुपयोग से पीड़ित महिलाओं को तथा महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति के लिए नयाचार के राज्य पक्षकारों के विरुद्ध सक्षम बनायेगा। यह 2001 में लागू हो गया और लगभग 140 राज्य इसके पक्षकार बन चुके हैं।

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु सम्मेलन : अभिसमयों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रत्यायोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1976-1985) के दौरान तीन सम्मेलन आयोजित किए गए, प्रथम 1975 मेक्सिको सिटी, द्वितीय 1980 कोपेनहेगन, तृतीय 1985 नैरोवी, एवं चौथा सम्मेलन 1995 में बीजिंग में हुआ जो कि अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा।

बीजिंग सम्मेलन में यह कहा गया कि महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार है। सम्मेलन में किसी भी ऐसे संघर्ष की समाप्ति की अपेक्षा की गयी जो महिलाओं के अधिकारों एवं कतिपय परम्परागत या रूढ़िगत प्रचलन सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों एवं धार्मिक अतिवादिताओं के बीच उत्पन्न होते हैं।

इस सम्मेलन में एक कार्य योजना का प्रारूप विचारार्थ तैयार किया गया, जिसमें महिलाओं से संबंध रखने वाले 12 समालोचनात्मक क्षेत्रों की पहचान की गयी जो बढ़ते हुए भार, निर्धनता, शैक्षिक अवसर, स्वास्थ्य की प्रस्थिति, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, महिलाओं पर सशस्त्र अथवा अन्य प्रकार के संघर्ष, आर्थिक संरचनाओं एवं नीतियों में महिलाओं की पहुँच एवं भागीदारी में असमानता तथा सभी स्तरों में भागीदारी करने एवं निर्णय निर्माण में पुरुष एवं महिलाओं के बीच असमानता तथा महिलाओं की उन्नति के लिए सभी स्तर पर अपर्याप्त कार्यप्रणाली महिलाओं के संभव योगदान की अभिवृद्धि करने के लिए संचार माध्यम की अपर्याप्त गतिशीलता तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में महिलाओं के योगदान के लिए पर्याप्त मान्यता एवं समर्थन में तथा पर्यावरण एवं बालिका शिशुओं के संरक्षण की उपयुक्त मान्यताओं में कमी आदि शामिल थे।

1. संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 2000 में महिलाओं पर विशेष सत्र 2000 लिंग समानता, विकास एवं शांति का आयोजन किया। इसे बींजिग + 5 के नाम से जाना जाता है।
2. महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्ति पर समिति ने 2004 में यह स्वीकार किया था कि अभिसमय को स्वीकारने के 25 वर्ष बाद भी विश्व में किसी भी देश ने क़ानून एवं व्यवहार में लिंगों के बीच संपूर्ण समानता प्राप्त नहीं की है। समिति ने यह भी अभिकथित किया कि अभिसमय के पक्षकार राज्यों में 178 राज्यों में भेदभाव पूर्ण क़ानून विद्यमान है। अन्य देशों में क़ानून समानता को पोषित तो करते है, किंतु अनौपचारिक भेदभाव विद्यमान है।

भारत में महिलाओं की स्थिति : भारत ने 9 जुलाई, 1993 को महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 1979 का अनुसमर्थन किया। अभिसमय के अनुसमर्थन ने भारत को अभिसमय द्वारा आरोपित कर्त्तव्य का सम्मान करने के लिए कहा।

भारत में संविधान के भाग 3 एवं 4 में मूल अधिकारों और निदेशक तत्त्वों में मानव अधिकारों को सम्मिलित किया गया है और इनमें महिलाओं के संबंध में विशेष उपबंध भी किए गए हैं। मधु किश्वर बनाम बिहार राज्य में[1] माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों की अविभाज्य योजना है। अभिसमय का अनुच्छेद 2(ड) राज्य पक्षकारों को यह आदेश देता है कि वे अपने संविधान में अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय और मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम लिंग भेद पर आधारित भेदभाव रोकें।

भारत संविधान के अनुच्छेद 14 में महिलाओं को समानता का अधिकार है एवं विधि का समान संरक्षण प्राप्त है। अनुच्छेद 15 यह उपबंधित करता है कि प्रत्येक महिला नागरिक को सार्वजनिक स्थानों यथा सार्वजनिक दुकानों, भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन में प्रवेश का अधिकार होगा और राज्य निधि से पूर्णतः या भागतः पोषित या साधारण जनता के प्रयोग में आने वाले कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के लिए महिलाओं पर कोई निर्बंधन नहीं होगा। अनुच्छेद 16 के अंतर्गत महिलाओं को राज्य के अधीन धारित किसी पद पर नियोजन एवं नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों (महिलाओं सहित) के लिए अवसर की समानता होगी। भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15(3) में यह भी उपबंध किया गया है कि राज्य महिलाओं के लिए विशेष उपबंध कर सकता है। फलस्वरूप भेदभाव को समाप्त कर समान स्तर पर लाने के लिए महिलाओं के लिए विधिक प्रावधान किए गए। जैसे पंचायतों व नगरपालिकाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण।[4] इसे भारत में स्त्रियों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए एक बड़ा क़दम माना गया है।[5] संविधान के अनुच्छेद 51-क(ड) के अंतर्गत महिलाओं का सम्मान करना मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है।

एयर इंडिया बनाम नरगिस मिर्जा[6] में उच्चतम न्यायालय ने नियमावली के उस नियम को जिसमें यह शर्त निर्धारित की गई की पहली बार गर्भवती होने पर उसकी सेवा समाप्त कर दी जाएगी असंवैधानिक कहकर निरस्त कर दिया था। न्यायालय का कथन था कि ''हमें यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिस्थितियों के अधीन एक वायु सेना की परिचालिका की सेवाओं की समाप्ति न केवल एक निर्दयी कृत्य है, अपितु भारतीय स्त्रीत्व जो अत्यंत पवित्र एवं पोषित संस्था है का एक खुला अपमान भी है।'' किंतु वायु परिचारिकाओं पर इस नियंत्रण को उचित ठहराया है कि वे सेवा के चार वर्ष के अंतर्गत विवाह न करेंगी।

मायादेवी बनाम महाराष्ट्र सरकार[7] के मामले में इस अपेक्षा को अवैध तथा असंवैधानिक निर्णीत किया गया है कि एक विवाहित महिला को सार्वजनिक सेवा के लिए आवेदन देने के पूर्व अपने पति की सहमति प्राप्त करना अनिवार्य है। माननीय न्यायालय ने यह टिप्पणी भी की थी कि ऐसी अपेक्षाएँ महिलाओं की समानता के विरुद्ध है।

विशाखा तथा अन्य बनाम राजस्थान राज्य[8] एक महत्त्वपूर्ण मामला है महिलाओं के विरुद्ध किए जा रहे संस्थागत यौन उत्पीड़न पर। इस विषय पर कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं और एन.जी.ओ. द्वारा संस्थाओं में यौन उत्पीड़न रोकने के लिए रिट याचिका प्रस्तुत कर यह माँग की गई थी कि वर्तमान विधि में जो कमी है, उसकी पूर्ति न्यायिक प्रक्रिया द्वारा की जानी चाहिए और इस माध्यम से सभी कार्यस्थलों पर महिलाओं के साथ होने वाले यौन उत्पीड़न को रोका जाए। तात्कालिक कारण जो था, रिट प्रस्तुत करने का वह यह था कि भँवरी देवी जो एक सामाजिक कार्यकर्ता थी वह बाल विवाह रोकने का प्रयास कर रहीं थी। इस कारण उनके साथ निर्मम तरीके से सामूहिक बलात्कार किया गया।

न्यायालय का कहना था कि कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न की प्रत्येक घटना 'लैंगिक समानता के मूल अधिकार तथा स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन में होती है। भारत में न तो सिविल और न ही दांडिक विधियाँ कार्यस्थलों में यौन उत्पीड़न के लिए महिलाओं को विशिष्ट रक्षा का उपबंध करती है।'' अतः न्यायालय ने यौन उत्पीड़न के विरुद्ध लैंगिक समानता और प्रत्याभूति के मूल मानव अधिकार का प्रभावकारी प्रवर्तन करने के लिए कई मार्गदर्शक सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं, जब तक इस हेतु विशिष्ट विधि का निर्माण नहीं होता है यह सभी मार्गदर्शक सिद्धांत कार्य स्थलों एवं संस्थानों में मान्य रहेंगे। मुख्य मार्गदर्शक सिद्धांत इस प्रकार हैं --

1. सभी कार्य स्थलों एवं संस्थानों में नियोजक का कर्त्तव्य होगा कि वे यौन उत्पीड़न के कृत्यों को रोके अथवा नियंत्रित करें और सभी आवश्यक कार्यवाही के लिए प्रक्रिया का उपबंध करें।
2. कार्यस्थलों एवं संस्थानों के सभी कर्मचारियों को
   (क) यौन उत्पीड़न का अभिव्यक्त प्रतिषेध जैसा कि कार्यस्थल में प्रतिभाषित है, उचित तरह से प्रचलित एवं प्रकाशित करना।
   (ख) आचरण और अनुशासन से संबंधित सरकार व सार्वजनिक प्रकार के निकायों के नियमों-विनियमों को यौन उत्पीड़न को रोकने संबंधी नियमों और विनियमों में सम्मिलित करना चाहिए और अपराधी के विरुद्ध ऐसे नियमों में उचित दंड की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ग) निजी कर्मचारियों के संबंध में उपयुक्त निषेधों को औद्योगिक नियोजन (स्थाई आदेश) अधिनियम 1946 के अंतर्गत स्थाई आदेश में सम्मिलित करना चाहिए।

(घ) उचित कार्य शर्तों का उपबंध कार्य, विश्राम, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के संबंध में बनाया जाना चाहिए, जिससे प्रतिकूल वातावरण न बने।

3. जहाँ भारतीय दंड संहिता अथवा किसी अन्य विधि के अंतर्गत ऐसा आचरण निर्धारित अपराध के तुल्य होता है, वहाँ नियोजन अधिकारी परिवाद प्रस्तुत करके विधि के अनुसार उचित कार्यवाही का आरंभ करेगा। यौन उत्पीड़न से पीड़ित व्यक्ति को यह विकल्प प्राप्त होना चाहिए कि वे कुकृत्य करने वाले व्यक्ति का स्थानांतरण करा दें अथवा वे अपना स्थानांतरण स्वयं करा लें।
4. नियोजक द्वारा समुचित अनुशासन कार्यवाही करना जो सुसंगत आचरण नियमावली के अनुसार आचरण सदाचार के समान हों।
5. पीड़ित द्वारा किए गए परिवार का उपचार करने के लिए नियोजिक संगठन से उचित परिवाद मशीनरी का सृजन होना चाहिए और इसे परिवादी को समयबद्ध उपचार सुनिश्चित कराना चाहिए।
6. एक परिवार समिति, एक सलाहकार अथवा अन्य समर्थन सेवा की व्यवस्था करना पर्याप्त होगा। जहाँ आवश्यक हो वहाँ गुप्तता की व्यवस्था हो। समिति का अध्यक्ष एक महिला को होना चाहिए और इस समिति की आधी सदस्याएँ महिला होनी चाहिए। वरिष्ठ स्तर के अनुचित दबाव अथवा प्रभाव रोकने की संभावना के लिए ऐसी परिवाद समिति को अन्य पक्ष को अंतग्रस्त करना चाहिए जो या तो एन. जी.ओ. अथवा अन्य निकाय हो, जो यौन उत्पीड़न के मामले से परिचित हो। परिवाद समिति को अपना प्रतिवेदन सरकार को देना चाहिए और यह बताना चाहिए कि उसने क्या कार्यवाही की है।
7. कर्मचारियों को, कर्मचारियों की सभा में और अन्य उचित मंच पर यौन उत्पीड़न के मामलों को उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए और नियोजक और नियोजित सभा में इस पर सकारात्मक रूप में विवेचन होना चाहिए।

न्यायालय ने आगे कहा कि उपर्युक्त मार्गदर्शक तथा मानक कार्यकारी स्त्रियों की लैंगिक समानता के अधिकार की सुरक्षा और प्रवर्तन के लिए कठोरता से पालन किए जाएँगे। ये निर्देश विधि में बाध्यकारी तथा प्रवर्तनीय होंगे जब तक कि इस मामले को नियंत्रित करने के लिए उचित विधान नहीं बनाया जाता।

विशाखा मामले के मार्गदर्शकों को विधि के रूप में रूपांतरण करने के लिए राष्ट्रीय

महिला आयोग ने वर्ष 2004 से प्रयास प्रारंभ किए परिणामस्वरूप 2013 में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (निवारक, प्रतिशोध, प्रतितोषक) पर अधिनियम बनाया गया।

निष्कर्ष

वैसे तो संविधान के द्वारा महिलाओं के लिए समानता का स्तर स्वीकार किया गया है एवं विशिष्ट विधियों का निर्माण तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (निवारक, प्रतिशोध, प्रतितोषक) अधिनियम 2013, भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत 2012 के पश्चात् किए गए विशेष संशोधन और पूर्व से चली आ रही विधियाँ भी महिलाओं के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए राज्य द्वारा अधिनियमित की गई हैं परंतु समानता का स्तर आज भी हमारे यहाँ की करोड़ों महिलाओं के लिए कल्पना के समान है। समान कार्य के लिए समान वेतन हेतु उत्तराखंड़ महिला कल्याण परिषद् बनाम स्टेट और उत्तर प्रदेश[9] के मामले में माननीय न्यायालय ने समान पद पर समान कार्य करने वाले पुरुष शिक्षकों को महिला शिक्षकों से अधिक वेतन दिए जाने को असंवैधानिक मानते हुए समान वेतन का आदेश दिया था। लेकिन अगर महिला कर्मकारों को कारख़ानों, खदानों या अन्य जगहों पर जाकर देखा जाए तो असमानता स्पष्ट दिखाई देती है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम और भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत उपबंधों के बावजूद भी दहेज हत्याओं में निरंतर वृद्धि, महिलाओं का अनैतिक व्यापार, संपत्ति का निर्बंधित अधिकार आदि भारत में महिलाओं की स्थिति को स्पष्ट करते हैं।

सुझाव : मेरे अनुसार जो मैंने अध्ययन के दौरान पाया कि मात्र विधिक प्रावधानों के राज्य द्वारा निर्मित कर दिए जाने से महिलाओं के जो विश्व की लगभग आधी आबादी हैं, मानव अधिकारों को संरक्षित नहीं किया जा सकता है। विशेष रूप से भारत में जहाँ आज भी सामाजिक रूढ़िवादिता हमारे अंतर्मन तक व्याप्त है वहाँ विधिक एवं संवैधानिक उपबंधों के साथ ही कुछ और भी प्रयास करने होंगे जो कि महिलाओं के मानव अधिकारों को संरक्षित कर उन्हें आत्म-गौरव से जीने में सर्मथ करें। जैसे :--

1. स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए और यह शिक्षा भेदभाव रहित हो।
2. सामाजिक जागरूकता लाने के प्रयास जो हम सभी समान रूप से करें कि महिला का सशक्त होना समाज के सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है।
3. घर में लड़के और लड़की को समान शिक्षा प्रदान की जाए और समान नैतिक आदर्श सिखाए जाएँ।
4. विधि का सम्मान करना सीखा और सिखाया जाए ताकि उपलब्ध विधियों का समुचित उपभोग किया जा सके।

5. नैतिक शिक्षा को अनिवार्य रूप से शिक्षा में सम्मिलित किया जाए।
6. महिलाओं को स्वयं जागरूक होने की आवश्यकता है। विधिक साक्षरता अनिवार्य है।
7. विधियों का समुचित क्रियान्वयन तभी संभव है जब पीड़ित पक्ष विधि का उपयोग करें, अतः पीड़ित महिलाओं को इसके लिए स्वयं को सशक्त करना होगा।
8. मीडिया महिलाओं के मानव अधिकारों के संरक्षण का एक सशक्त माध्यम है, वह महिलाओं को उपभोग की वस्तु की तरह पेश करने से परहेज़ करें और महिलाओं को उनके अधिकारों से परिचित कराएँ।
9. राज्य भी महिलाओं के संरक्षण के लिए निर्मित क़ानूनों का क्रियान्वयन दृढ़ इच्छा शक्ति से करे।
10. सबसे महत्त्वपूर्ण है कि समाज अपने नज़रियों को परिवर्तित कर लड़के-लड़कियों के बीच अंतर को दूर कर पुरुष-प्रधान सोच के संकीर्ण दायरे से अपने आप को मुक्त करें।

तभी संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा किए गए प्रयास यथार्थ में अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पाएँगे।

❑

संदर्भ

1. भारत में मानव अधिकार, प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी
2. मानव अधिकार, डॉ. बसंती लाल बाबेल
3. क़ानूनी अधिकार, डॉ. नीता शर्मा
4. सामाजिक न्याय और मानव अधिकार, डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा
5. महिला एवं बाल क़ानून, डॉ. बसंती लाल बाबेल
6. भारत का संविधान, आचार्य डी.डी. बसु, जे.एन. पांडेय
7. भारतीय दंड संहिता, मुरलीधर चर्तुवेदी
8. Commentry on human rights, R.P. Kataria
9. मानव अधिकार विधि, एच.ओ. अग्रवाल

डॉ. विनोद कुमार बागोरिया

व्यक्तिक विधियों में भारतीय महिलाओं को संरक्षण : एक समान व्यक्तिक विधि की आवश्यकता

भारत विभिन्न धर्मों का देश, यानि कि धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ पर हिंदुओं पर हिंदू विधि, मुसलमानों पर मुस्लिम विधि और अन्य पर विशेष विधि लागू होती है। नारी एक व्यक्ति ही नहीं अपितु एक शक्ति के रूप में है। हमारे संविधान में महिलाओं के लिए विशेष उपबंध किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 15(1) में यह कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान में से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा अर्थात् किसी महिला के साथ इस आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा कि वह महिला है। महिला, महिला के साथ भी कोई विभेद नहीं किया जा सकता।

संविधान में ऐसे उपबंध महिलाओं की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखकर किए गए है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 15(3) में कहा गया है कि :

''इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों के लिए विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी''। अनुच्छेद 15(3) के द्वारा महिलाओं को विशेष रूप से रक्षित किया गया है और राज्य स्त्रियों और बच्चों के लिए विशेष उपबंध कर सकता है।

व्यक्तिक कानून और भारतीय महिलाएँ

स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् छठे दशक में देश की संसद ने महत्त्वपूर्ण पारिवारिक क़ानून पारित कर पारिवारिक विधियों का संहिताकरण किया। यह क़ानून इस प्रकार हैं :

1. विशेष विवाह अधिनियम, 1954
2. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

4. हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956
5. हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिकार अधिनियम, 1956

[A] हिंदू महिला के अधिकार

पत्नी से अभिप्राय

पत्नी का अभिप्राय विधितः विवाहिता पत्नी से है। **श्रीमती यमुना बाई बनाम अनंत शिवराम जाधव** (AIR 1988 SC 644) के प्रकरण में न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि यदि कोई स्त्री किसी ऐसे पुरुष से विवाह करती है जो पहले से ही विवाहित है तो वह भरण पोषण पाने के लिए अधिकृत न होगी। **सुमित्रा देवी बनाम अली हुसैन** (AIR 1979 SC 362) विवाहिता होने का अभिप्राय विधि की दृष्टि में विवाहिता होने से है। विवाहित विधितः होने के साथ-साथ इस तथ्य द्वारा भी पुष्ट होना चाहिए कि पक्षकारों के मध्य विधि की दृष्टि में विवाह हुआ था।

विवाह की योग्यता

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के अंतर्गत एक पुरुष की आयु 21 वर्ष एवं लड़की की आयु 18 वर्ष होनी आवश्यक है। यदि किसी भी वयस्कता की आयु से पूर्व विवाह किया जाता है तो ऐसा विवाह क़ानूनन अपराध है इसके लिए जुर्माना, कारावास या दोनों का प्रावधान है। परंतु यदि विवाह हो चुका हो तो ऐसा विवाह हिंदू विधि के तहत एक वैध विवाह ही माना जाएगा।

यदि किसी महिला या पुरुष का विवाह अल्पायु में संरक्षकों द्वारा करवाया गया है तो ऐसा होने के बाद जब वह प्राप्तव्य अवस्था में पहुँचते हैं तो इस विवाह को शून्यकरणीय करवाने का अधिकार उन दोनों को है। अतः हिंदू विधि में यदि किसी महिला का विवाह उसकी नासमझी में करवाया गया है तो उसे रद्द करवाया जा सकता है।

न्यायिक पृथक्करण

न्यायिक पृथक्करण के विषय में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 10 में उल्लेख है। न्यायिक पृथक्करण (1) विवाह के पक्षकारों में से कोई पक्षकार चाहे तो वह विवाह उस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, जिला न्यायालय को धारा-13 की उपधारा (1) में और पत्नी की दशा में उसी उपधारा-(2) के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी ऐसे आधार पर, जिस पर विवाह विच्छेद

के लिए अर्जी उपस्थित की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी उपस्थापित कर सकेगा।

जहाँ कि न्यायिक पृथक्करण के लिए आज्ञप्ति दे दी गई है, वहाँ याचिकादाता आगे के लिए इस आधार के अधीन होगा कि पक्षकार के साथ सहवास करे, किंतु यदि न्यायालय दोनो में से किसी पक्षकार द्वारा आवेदन पर ऐसी याचिका में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर वैसा करना न्याय के हित में और युक्तियुक्त समझे तो वह आज्ञप्ति का विखंडन कर सकेगा।

विवाह विच्छेद

हिंदू विवाह अधिनियम की धारा-13 में विवाह विच्छेद के विषय में प्रावधान किया गया है : (1) कोई विवाह, भले इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्टित हुआ हो, या तो पत्नी द्वारा पेश की गई याचिका पर विवाह विच्छेद की आज्ञप्ति द्वारा इस आधार पर भंग किया जा सकेगा कि --

(1) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपनी पत्नी या अपने पति से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है, या
(2) विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का बर्ताव किया गया है, या
(3) अर्जी के उपस्थापन के ठीक पहले कम से कम दो वर्ष की कालावधि तक अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है, या
(4) दूसरा पक्षकार दूसरे धर्म को ग्रहण करके हिंदू होने से प्रतिविरत हो गया है, या
(5) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृतचित रहा है, लगातार या आंतरिक रूप से इस किस्म के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे।

दांपत्य अधिकारों की पुनः स्थापना

विवाह के पक्षकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि एक दूसरे को पूर्ण सहयोग देते हुए जीवनयापन करे अर्थात् उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे दांपत्य कर्तव्य का निर्वहन करे। वास्तव में यह विवाह का एक प्रमुख लक्ष्य भी है।

दांपत्य अधिकारों की पुनः स्थापना के विषय में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 में प्रावधान किया गया है।

धारा 9 में कहा गया है कि जबकि पति या पत्नी में से किसी ने युक्तियुक्त कारण हेतु के बिना दूसरे से अपना सहचर्य प्रत्याहरण कर लिया है तब ऐसी दशा में पीड़ित पक्षकार दांपत्य अधिकारों की पुनः स्थापना के लिए जिला न्यायालय में आवेदन कर सकता है। न्यायालय इस संबंध में प्रस्तुत याचिका में निहित बातों पर विचार करेगा और उसमें वर्णित बातों के बारे में आवेदन करने का कोई वैध आधार होने की दशा में तदनुसार अपना निष्कर्ष देगा।

धारा 9 के स्पष्टीकरण में यह कहा गया है कि जहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य से प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रति हेतु है वहाँ युक्तियुक्त प्रति हेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा, जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है।

इसके अनुसार यदि पति या पत्नी में से कोई भी दूसरे पक्ष को बिना किसी युक्तियुक्त हेतु के साहचर्य से वंचित कर देता है तो पीड़ित पक्षकार दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापना हेतु सक्षम न्यायालय में आवेदन कर सकता है। **मदन बनाम सरला** (1966 P.L.R. 117) के मामले में यह कहा गया है कि यदि विवाह में कोई एक पक्ष अपने आचरण के द्वारा दूसरे पक्ष को अलग रहने के लिए विवश कर दे या दूसरे पक्ष का उसके साथ रहना असंभव कर दे तो इसे युक्तियुक्त प्रति हेतु माना जायेगा। विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों में युक्तियुक्त प्रति हेतु पर भली प्रकार विचार किया गया है --

निम्न को युक्तियुक्त प्रतिहेतु का मामला माना गया है --

- जहाँ पति द्वारा पत्नी पर असती होने का मिथ्या लाँछन लगाया गया है, (**सराहू बनाम पिल्ली अब्राहम** AIR 1964 केरल 15)।
- निर्दयतापूर्ण व्यवहार (**गुरुदेव बनाम सरवन** AIR 1966 J & K 95)।
- वैवाहिक जीवन को समाप्त करने वाला आचरण (**बाबू बनाम सुशीला** (AIR 1964 SC 73)।
- पति द्वारा पत्नी को अपने माता-पिता के यहाँ रहने के लिए विवश करना (**गोविंदा बना शिवचरण** AIR 1964 केरल 15)।
- पति के साथ जहाँ पत्नी आतंकित रहती है। (**शांति बनाम बलबीर** (AIR 1971 दिल्ली 294)।

भरण-पोषण/गुजारा भत्ता लेने का अधिकार

(1) यदि हिंदू पत्नी का उसके पति द्वारा विवाह विच्छेद के पश्चात् परित्याग कर

दिया जाता है तो उसे उसके पति द्वारा प्रतिमाह भरण-पोषण दिया जाता है। ये रकम न्यायालय द्वारा ही तय की जाती है।

(2) यदि पत्नी विधवा है तो उसके ससुर के द्वारा उसको भरण पोषण दिलाया जाता है।

(3) यदि महिला विकलांग है तो उसे बालिग़ होने के पश्चात् भी पिता द्वारा भरण-पोषण दिया जाना आवश्यक है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 से शासित महिलाएँ इस क़ानून अथवा हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 के अंतर्गत गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। इसी प्रकार, ईसाई महिलाएँ भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम 1869, पारसी महिलाएँ पारसी विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 और मुस्लिम महिलाएँ अपनी स्वीय विधि के अंतर्गत गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। महिलाएँ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अंतर्गत भी पति से गुज़ारा-भत्ता ले सकती है। इस धारा के अंतर्गत सभी धर्मों की महिलाएँ गुज़ारा-भत्ता पाने की हक़दार हैं किंतु मुस्लिम महिलाएँ 1986 के महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत ही गुज़ारा-भत्ता पाने की हक़दार हैं। महिलाएँ मुकदमे के दौरान भरण-पोषण के लिए गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। अंतरिम राहत देने का औचित्य यह है कि वैवाहिक संबंधों में तनाव आने पर प्रायः महिलाओं को पति का घर छोड़ना पड़ता है और उसे अपने माता-पिता आदि संबंधियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पति का यह क़ानूनी दायित्व है कि वह पत्नी को गुज़ारा-भत्ता और मुकदमा ख़र्च दे। यदि पत्नी पति पर मुकदमा करे या पति करे, दोनों स्थितियों में पत्नी आवेदन कर अंतरिम राहत ले सकती है क्योंकि यदि पत्नी के पास अपने भरण-पोषण और मुकदमे की कार्यवाही के लिए व्यय करने के साधन नहीं हैं तो साधनों के अभाव में वह न्यायालय से न्याय नहीं पा सकेगी।

संपत्ति में अधिकार

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन के बाद माता-पिता की संपत्ति में पुत्री को पुत्र के बराबर हक़ है। पुत्री के हस्ताक्षर के बगैर न तो संपत्ति ट्रांसफ़र हो सकती है, न पट्टा बन सकता है, न रजिस्ट्री हो पाती है इसके लिए सबसे पहले बेटी को संपत्ति में हक़ का त्याग करना पड़ता है। बेटी द्वारा संपत्ति में से अपने हक़ का त्याग करना एक बड़ी विडंबना है।

महिला को दत्तक ग्रहण का अधिकार

हिंदू विधि में पति-पत्नी मिलकर, आपस में तय कर किसी बच्चे को दत्तक ले सकते है। परंतु यदि युवती परित्यकता, विधवा या अविवाहित है तो भी वो किसी बच्चे को पुत्र या पुत्री के रूप में दत्तक ले सकती है।

[B] मुस्लिम महिलाओं के अधिकार

पत्नी से अभिप्राय

मुस्लिम विवाह एक संविदा है, ना कि संस्कार। **मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम** (1985 SCR (3) 844) के वाद में जस्टिस महमूद ने कहा कि मुस्लिम विधि में विवाह यानी निकाह एक संविदा है ना कि संस्कार। इसीलिए पत्नी भी उस संविदा की एक भागीदार है क्योकि संविदा के सारे तत्त्व इसमें विद्यमान रहते है। इसलिए निकाह पूर्ण रूप से एक सिविल संविदा है। **अब्दुल कादिर बनाम सलीमा** (1986, 8 इला. 149) में न्यायाधीश महमूद और न्यायाधीश मित्तल ने मुस्लिम विवाह को संविदात्मक दायित्व के रूप में अभिनिर्धारित किया है।

विवाह की योग्यता

मुस्लिम विधि में विवाह की योग्य आयु 16 वर्ष या लड़की के रजस्वला होने होने तक की है। इससे बाल विवाह अधिक होते हैं जो बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। इसके अलावा कम उम्र में हुए विवाह से पारिवारिक क्लेश भी ज़्यादा होता है क्योंकि कम उम्र में माता-पिता बनने पर उन पर बच्चों का बोझ आ जाता है।

यौवन का विकल्प (ख्यार-उल-बुलूग)

नाबालिग यानि मुस्लिम विधि के अनुसार 16 वर्ष की आयु के वर-वधू या वो लड़की के पास यौवन का विकल्प होता है। वो इन दोनों में से कोई भी अवसर आने पर तुरंत अपने विवाह को रद्द करवा सकती है परंतु इन अवसरों को ज़्यादा समय बितना नहीं चाहिए वरना वो इस विकल्प को खो देगी और उसका विवाह मान्य होगा और वो कभी भी छुटकारा नहीं पा सकती और ना ही कभी न्यायालय से कोई निजात पा सकती है।

अवयस्क का विवाह

इस्लामिक विधि के अनुसार कम आयु के बालकों का विवाह करवाया जा सकता है। ये उसके संरक्षक पिता, पितामह द्वारा करवाया जा सकता है। इसमें माता बच्चों की संरक्षक नहीं होती।

तलाक

मुस्लिम विधि में तलाक़ का प्रावधान है इसके अंतर्गत यदि पति चाहे तो

किसी भी समय (सिर्फ स्त्री रजस्वला हो उस समय नहीं) उसे तलाक़ दे सकता है। इस विधि में कोई भी पति अपनी अपनी पत्नी को बिना कारण बताए तलाक़ दे सकता है। परंतु पत्नी अपने पति को किसी भी कारण से तलाक़ नहीं दे सकती। अगर उसका पति 7 वर्षों से लापता है और उसे किसी ने नहीं देखा तो वो अपने पति का परित्याग कर सकती है।

मुस्लिम महिलाओं को भरण पोषण/ गुजारा भत्ता का अधिकार

मुस्लिम विधि में तलाक़ के बाद भरण पोषण नहीं मिलता बल्कि मेहर की राशि होती है जो कि उसे विवाह के पश्चात् मिलती है चाहे तलाक़ हो या न हो। विधिवेत्ता एफ.डी. मुल्ला ने कहा है कि मेहर वह रकम है जो एक पत्नी को अपना शरीर सौंपने के दौरान मिलती है। इस रकम का दिया जाना अति आवश्यक है। ये हर हाल में अदा की जाती है। परंतु यह रकम प्रायः दो हज़ार से लेकर 1 या 2 लाख रुपए तक होती है जिससे जीवन यापन नहीं किया जा सकता। मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर संरक्षण अधिकार) अधिनियम, 1986 की धारा 4 के अनुसार पति द्वारा मुस्लिम महिलाओं को गुज़ारा-भत्ता देने का प्रावधान नहीं है। उसे गुज़ारा-भत्ता उन रिश्तेदारों से मिलने का प्रावधान है जो उसकी मृत्यु पर उसकी संपत्ति के वारिस होते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पति पत्नी का वारिस माना जाता है। और अगर बच्चे होते हैं तो उसे (पति) चौथाई हिस्सा मिलता है और बच्चे न होने की स्थिति में वह आधे का वारिस होता है। किंतु पत्नी की संपत्ति का वारिस होते हुए भी पत्नी को गुज़ारा-भत्ता देने का उसका दायित्व नहीं है क्योंकि यह कहा जाता है कि तलाक़ के बाद वह पति नहीं रहता और पत्नी उसकी पत्नी नहीं रहती अतः गुज़ारा-भत्ता क्यों दिया जाए। यदि बच्चे महिला को गुज़ारा-भत्ता नहीं दे सकते तो न्यायालय माता-पिता को गुज़ारा-भत्ता देने के लिए कहता है और यदि माँ-बाप भी उसे गुज़ारा-भत्ता देने में सक्षम न हों तो अन्य रिश्तेदारों को यह दायित्व सौंपा जाता है। यदि महिला को रिश्तेदारों से गुज़ारा-भत्ता नहीं मिलता तो न्यायालय उसे वक्फ बोर्ड से गुज़ारा-भत्ता दिलाने का आदेश देता है। इस प्रकार देखा जा सकता है मुस्लिम तलाक़शुदा महिला को अनेक व्यक्तियों से गुज़ारा-भत्ता लेने का प्रावधान है। जब उसे गुज़ारा-भत्ता नहीं मिलता तो उसे अपने रिश्तेदारों के विरुद्ध मुकदमा भी करना होता है। क्या यह संभव है? वह कितनों के विरुद्ध मुकदमा चलाएगी?

संपत्ति में से अधिकार

मुस्लिम विधि में एक पुत्री को पुत्र से आधी संपत्ति देने का प्रावधान है। जिसके स्थान पर अब उसे थोड़ा दहेज देकर उस संपत्ति से वंचित कर दिया जाता है।

दत्तक ग्रहण

मुस्लिम विधि में दत्तक लिया या दिया नहीं जा सकता इसके स्थान पर कोई व्यक्ति यदि चाहे तो किसी बच्चे का भरण-पोषण भले कर सकता है पर वो उसकी संतान नहीं माना जाएगा। परंतु महिलाएँ तो ये भी नहीं कर सकती।

इस प्रकार से हिंदू एवं मुस्लिम महिलाओं के अधिकार अलग-अलग है जिसके अंतर्गत मुस्लिम महिलाओं को पुरुष के बराबर अधिकार नहीं है। इसलिए समय की यह माँग है कि हमारे देश में समान व्यक्तिक विधि लागू की जानी चाहिए। **मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम** (1985 SCR (3) 844) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि देश में समान व्यक्तिक विधि लागू की जानी चाहिए परंतु इतना समय बीतने के बाद भी हमारे देश में समान व्यक्तिक विधि लागू नहीं की गई है जिससे मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों का व्यापक रूप से हनन हो रहा है।

❑

डॉ. शुभा शर्मा एवं डॉ. नयनी सिंह

भारत में महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकार

नारी ईश्वर की एक अद्वितीय कृति है, जो फूल की तरह कोमल पर ईरादों से पत्थर की तरह कठोर और शक्तिशाली होती है। वर्तमान में नारी ने समाज में स्थान बनाया है, अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है, चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो -- राजनीति, शिक्षा, प्रशासन, अंतरिक्ष, कला, प्रौद्योगिकी, खेल आदि। प्रतिवर्ष 8 मार्च अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है, परंतु मेरी दृष्टि में तो वर्तमान में हर एक दिन महिलाओं का ही है, वह उसकी वास्तविक हक़दार हैं। घर की ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ उन्होंने बाहरी ज़िम्मेदारियों को भी पूर्ण निष्ठा से निभाया है। वर्तमान समय में नारी ने प्रत्येक क्षेत्र में यह सिद्ध कर दिखाया है कि वे पुरुषों से कम नहीं है। प्रथम महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, प्रथम महिला लोक सभा अध्यक्ष मीरा कुमार इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। कारपोरेट दृष्टि से यदि देखें तो विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली सौ महिलाओं की सूची में तीन भारतीय महिलाओं -- इंदिरा नूई, शिखा शर्मा और चंदा कोचर को शामिल किया गया है। यह महिलाओं की वर्तमान शिक्षा और सशक्तिकरण का प्रमाण है। 'राधा कृष्णन कमीशन' (1948-49) ने स्त्री शिक्षा के विषय में कहा कि 'शिक्षित स्त्रियों' के बिना शिक्षित पुरुष हो ही नहीं सकता। राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958) का गठन दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में किया गया था जिसने स्त्री शिक्षा के विषय में उल्लेखनीय सुझाव देते हुए कहा कि स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन 1992 में किया गया जिसने महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाएँ बनाकर क्रियान्वित करने का सुझाव दिया। राज्य सरकारों ने भी बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाओं को अपने स्तर पर लागू किया है।

महिला सशक्तिकरण की जब भी बात कही जाती है तब सिर्फ़ राजनीतिक, आर्थिक ही नहीं समाजिक सशक्तिकरण पर चर्चा होती है, महिलाओं को हमेशा दूसरे दर्जे का

नागरिक माना जाता है भले ही उन्हें कई क़ानूनी अधिकार मिल चुके हैं फिर भी वह महिलाएँ शिक्षा के अभाव के कारण अपने क़ानूनी अधिकारों का समुचित उपयोग नहीं कर सकती है। शिक्षा एक ऐसा साधन है जो सामाजिक विकास की गति को बढ़ाने में सहायक है। समानता, स्वतंत्रता के साथ-साथ शिक्षित व्यक्ति अपने क़ानूनी अधिकारों का भी बेहतर उपयोग कर सकता है और राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से उन्नति भी कर सकता है।

भारत में स्त्रियों की दशा कभी भी एक समान नहीं थी परंतु समय के साथ परिवर्तन होते रहे हैं, कभी नारी को देवी के रूप में पूजा जाता था तो कहीं उसका अपमान, उत्पीड़न, अत्याचार एवं जुल्म ढाने की सभी हदें पार कर दी। समाज में अनेक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का शिकार हमेशा महिलाएँ ही होती हैं जिनमें कन्या-वध, भ्रूण-हत्या, सती-प्रथा, वेश्यावृत्ति, दास-प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा इत्यादि हैं।

सशक्तिकरण का अर्थ है शक्तिशाली बनाना, महिला सशक्तिकरण वह है जिसके द्वारा समाज के विकास की प्रक्रिया में राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए जाते हैं।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का कथन है कि भारतीय नारी श्रम से नहीं घबराती किंतु आँसुओं की चिंता करते हुए, वह रोटी, असमान व्यवहार, शोषण से अवश्य डरती है। शिक्षा अज्ञान को दूर करके विकास और उन्नति के मार्ग के नए अवसर प्रदान करती है। भारत में महिलाओं व पुरुषों की शिक्षा में असमानताएँ पाई जाती हैं। लड़की को पराया धन मान कर उसके अधिकारों का हनन हो जाता है। इसी कारण महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अंध-विश्वास एवं रूढ़िवादिता कूट-कूट कर भरी है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर का दर्ज़ा दिलाने की बातें करके काम नहीं चलेगा। लक्ष्य निर्धारित के लिए दृढ़-इच्छाशक्ति का होना और इस दिशा में कार्य करना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में महिला सशक्तिकरण के कार्यों में तेज़ी भी आई है, सरकार महिला उत्थान के लिए नई-नई योजना बना रही है जिससे औरत बिना किसी सहारे के हर चुनौती का सामना करने के लिए तैयार है।

सशक्तिकरण से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है जिससे उसमें यह योग्यता आ जाती है जिससे वह अपने जीवन में जुड़े हुए सभी निर्णय स्वयं ले सके। वहीं अपनी स्वतंत्रता और अपने आप निर्णय लेने के लिए महिलाओं को अधिकार देना ही महिला सशक्तिकरण है। महिला सशक्तिकरण का सही मतलब तब समझ में आएगा, जब उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान की जाएगी और जिससे वह हर क्षेत्र में स्वतंत्र होकर अपने निर्णय अपने आप ले सके। समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए, भारत में कुछ ठोस क़दम उठाने की ज़रूरत है जिससे वह सही दिशा में तेज़ी

से आगे बढ़ सके।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का महिला सशक्तिकरण में इतना बड़ा योगदान है कि शब्दों में मूल्यांकन करना संभव नहीं है। आजीवन समाजिक स्वतंत्रता, न्याय समानता के लिए संघर्ष, दलितों का हक़ दिलवाने का श्रेय अंबेडकर जी को ही जाता है। ये छुआछूत की समस्या को भारतीय समाज में फैली हुई महामारी मानते थे। उन्होंने दलित वर्ग के लोगों को आपसी भेदभाव भुलाकर अपने अधिकारों के प्रति लड़ने को प्रेरित किया।

अंबेडकर जी ने कहा कि ''भारत एक वर्ण हो, जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए अंतर्जातीय विवाह हो, पुरोहित के पद पर निर्वाचन के माध्यम से भर्ती हो तथा इस पद पर ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं होना चाहिए। 20वीं शताब्दी में कुछ प्रगतिशील भारतीयों ने भी भारत में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयास किए। उस समय महिला सुधार आंदोलन चरम सीमा पर पहुँच गया। महिला सुधार के लिए गाँधी जी, विभिन्न महिला संगठन व सरकार सभी प्रयासरत् हो गए। स्त्रियों को विवाह, संपत्ति, संरक्षकता एवं विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार मिलने लगे तथा सामाजिक रूढ़ि व कुरीतियों से मुक्ति मिली। इन सभी सुविधाओं को संविधान द्वारा इनसे जुड़े निम्न अधिनियम बनाकर स्थायी रूप दे दिया गया :--

1. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
2. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
3. हिंदू नाबालिग़ एवं संरक्षकता अधिनियम, 1956
4. हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956
5. विशेष विवाह अधिनियम, 1956

डॉ. भीमराव अंबेडकर का दलितों व महिलाओं के उत्थान के लिए बहुत बड़ा योगदान है। अंबेडकर जी ही सही अर्थों में एक महा-मानव, दलितों व महिलाओं के मसीहा 'पैगंबर या देवदूत' थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा कहा गया मशहूर वाक्य है ''लोगों को जगाने के लिए महिलाओं का जागृत होना ज़रूरी है।'' एक बार महिला जब अपना क़दम बढ़ा लेती है तब ही परिवार आगे बढ़ता है, गाँव भी आगे बढ़ता है और राष्ट्र भी। सभी क्षेत्रों में महिलाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए। ये महिलाओं का जन्मसिद्ध अधिकार है कि उन्हें समाज में पुरुषों के बराबर महत्त्व मिले। महिलाओं में वह ताक़त है जो समाज में, देश में बहुत कुछ बदल सकती है। पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाली लैंगिक असमानता और बुरी प्रथाओं को हटाने के लिए सरकार द्वारा क़ानूनी अधिकार बनाए और लागू किए गए हैं। हालाँकि ऐसे बड़े विषयों को सुलझाने के लिए महिलाओं सहित सभी के लगातार सहयोग की ज़रूरत है। आधुनिक समाज महिलाओं के अधिकार को लेकर ज़्यादा जागरूक है। बहुत से स्वयंसेवी समूह इस दिशा में कार्य

कर रहे हैं। क़ानूनी अधिकार के साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए संसद द्वारा पारित किए गए कुछ और अधिनियम हैं --

1. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976
2. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961
3. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
4. मैडिकल टर्मीनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी अधिनियम, 1987
5. बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006
6. कार्य स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013

इसी पर रोचिका शर्मा ने कहा है कि --

मनचले, वाणी के तीरों से, सीना छलनी कर देते,
बहशी, दरिंदे, पशु, असुर, क्यूँ हवस अपनी बुझा लेते
सरस्वती, लक्ष्मी, शीतला, नारी, दुर्गा भी बन जाए
मन मोहिनी, गणगौर सी, काली का रूप भी दिखलाए
शक्ति को ना ललकारो, इसको नारी ही रहने दो
करुणा, ममता की सरिता ये, कल-कल शीतल ही बहने दो

-- रोचिका शर्मा

महिलाओं को भारतीय क़ानून द्वारा दिए गए अधिकार

1. पुरुषों के बराबर वेतन
2. यौन उत्पीड़न की शिकार महिलाओं को नाम न छापने देने का अधिकार।
3. काम पर हुए अत्याचारों के ख़िलाफ़ अधिकार।
4. घरेलू हिंसा के ख़िलाफ़ अधिकार
5. प्रसव के बाद 12 सप्ताह (3 महीने) तक महिला के वेतन में कोई कटौती नहीं होने देने का अधिकार यानी मातृत्व संबंधी लाभ के लिए अधिकार।
6. कन्या भ्रूण-हत्या के ख़िलाफ़ अधिकार और लिंग चयन पर रोक।
7. बलात्कार की शिकार हुई किसी भी महिला को मुफ्त क़ानूनी मदद का अधिकार।
8. रात में (सूरज डूबने के बाद व उगने से पहले) गिरफ्तार न होने का अधिकार।
9. पुश्तैनी संपत्ति में महिला और पुरुष दोनों का बराबर का अधिकार।

समाज के प्रयासों से उद्यमियों व रोज़गार में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी उनका सशक्तिकरण होगा और देश का आर्थिक विकास भी तीव्र गति से होगा।

आज जब सरकार महिलाओं के विकास और उन्हें सशक्त बनाने वाले प्रयासों पर जोर दे रही है तो हर क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। शिक्षा के माध्यम से ही लड़कियों का आर्थिक व सामाजिक सशक्तिकरण संभव है क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिससे संस्कारों का आदान-प्रदान अगली पीढ़ियों की माताओं द्वारा किया

जाता है, इसलिए यदि महिलाओं को सच्चे अर्थों में सशक्त बनाना है तो उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा।

❑

संदर्भ

1. मनोज कुमार एवं योगेंद्र सिंह, महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमि, जनरल ऑफ नेशनल डेवलपमैंट, वॉल्यूम-3 पृ. 23, 2010
2. शुभा शर्मा एवं डॉ. उमा जोशी, नारी उद्यमिता : गृह-विज्ञान में उद्योग के बढ़ते कदम, शोध-पत्र, एल.आर. कॉलेज, साहिबाबाद, 2010
3. डॉ. संगीत सिंघल, वर्तमान परिदृश्य में महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा की अनिवार्यता, नेशनल सेमीनार, पृ. 50-51, रा.म. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कांधला (मुजफ्फर नगर), 2010
4. डॉ. संगीता गुप्ता, महिला सशक्तिकरण और उद्यमिता : भारतीय महिलाओं के समक्ष नए अवसर और चुनौतियाँ, कुमारी मायावती राजकीय महाविद्यालय, बादलपुर (उत्तर प्रदेश), पृ. 71, 2010
5. डॉ. आशा रानी मेहरौत्रा, डॉ. भीमराव अंबेडकर दलित क्रांति के अग्रदूत, राधा कमल मुखर्जी : चिंतन परंपरा, पृ. 19-20, वष्र-6, अंक-1, जनवरी-जून, 2004
6. डॉ. श्रीमती सुमेधा नीरज, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम और महिला सशक्तिकरण, राधा कमल मुखर्जी : चिंतन परंपरा, पृ. 54, वर्ष 10, अंक-2, जनवरी-जून, 2004
7. डॉ. रामकृष्ण जायसवाल, बाबा साहब भीमराव अंबेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राधा कमल मुखर्जी : चिंतन परंपरा, पृ. 152, वर्ष-8, अंक-2, जुलाई-दिसंबर, 2006
8. डॉ. अर्चना सिंह, डॉ. रश्मि कुमारी, कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ और समाधान, शहीद मंगल पांडेय राजकीय गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, मेरठ (उत्तर प्रदेश) पृ. 81, 2010
9. कपूर डॉ. शशि, नारी उद्यमिता : गृह-विज्ञान उद्योग में बढ़ते कदम, माता भगवती देवी राज.महा. आँवल खेड़ा, आगरा, पृ.78-79, नेशनल सेमिनार शहीद मंगल पांडेय गवनमेंट गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, मेरठ (उत्तर प्रदेश), 2010

डॉ. मुकेश कुमार मालवीय

भारत में लैंगिक विभेद एवं शैक्षिक अवसरों की समानता का प्रश्न

विगत कुछ दशकों से शिक्षा में लैगिंक समानता का मुद्दा शैक्षिक समाजशास्त्र के विमर्श का ज्वलंत प्रकरण बन गया है। जिस प्रकार से किसी व्यक्ति की जाति, वर्ग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धर्म इत्यादि कारक उसको प्राप्त शैक्षिक अवसरों को सुनिश्चित करते हैं, उसी प्रकार से सामाजिक संरचना में स्त्री एवं पुरुष के मध्य व्याप्त लैंगिक विभेद भी स्त्रियों की शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को प्रभावित करता है। इसके साथ ही स्त्री की जाति, वर्ग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धर्म तथा उसकी नगरीय एवं ग्रामीण पृष्ठभूमि की भी उसको प्राप्त शैक्षिक अवसरों को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : इन सब मुद्दों को व्यापक रूप से समझने के लिए लैंगिक संदर्भ में शैक्षिक अवसरों की समानता को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। वैदिक कालीन भारत में स्त्रियों को पुरुषों के समान शैक्षिक अवसर प्राप्त थे। वैदिक ग्रंथो में इसके अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं। अथर्ववेद में बालिकाओं के वेदाध्ययन करने एवं उनके उपनयन संस्कार का वर्णन मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद के एक प्रसंग 'अथ य इच्छेद्दुहिता में पण्डिता जायेत, सर्वमायुरियादति' (6.4.17) से स्पष्ट होता है कि प्राचीन ऋषि जहाँ बालकों को विद्वान् बनाने के लिए यत्न करते थे वहीं बालिकाओं को भी विदुषी बनाते थे।

कालांतर में उत्तर वैदिक कालीन समाज में इस दृष्टिकोण में अंतर आ गया एवं समाज में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के मुकाबले कमतर हो गया। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, विश्ववारा इत्यादि की परंपरा का अवसान होने लगा तथा मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ यथा 'स्त्रीशुद्रौ नाधीयताम् इति श्रुते' अर्थात स्त्री एवं शुद्र को नहीं पढ़ाना चाहिए

चल पड़ी जिससे स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित होने लगी एवं शैक्षिक क्षेत्र में लैंगिक विभेद का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रारंभ में बौद्ध संघों में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था। कालान्तर में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दे दी किंतु यह एक रियायत मात्र थी। ये स्त्रियाँ भिक्षुणी कहलाती थीं एवं संघ के नियमों का कठोरतापूर्वक निर्वहन करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। इनमें शील, भट्टारिका, प्रभुदेवी, अनुपमा, विजयंका और संघमित्रा के नाम उल्लेखनीय है। अल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'एजुकेशन इन एन्सियेंट इंडिया ' में लिखा है कि ''स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने हेतु दी गई अनुमति विशेषकर समाज के कुलीन एवं व्यावसायिक वर्गों में स्त्री शिक्षा के निमित्त बहुत अच्छा प्रोत्साहन थी'' (अल्तेकर, 1973, पृ. 329)। किंतु इस काल में केवल संपन्न परिवारों की स्त्रियाँ ही शिक्षा पाने का अवसर प्राप्त कर सकीं। अतः अल्तेकर का मानना है कि ''सामान्य स्त्री शिक्षा को बौद्ध धर्म से किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त न हो सकी'' (अल्तेकर, 1973, पृ. 223)।

धार्मिक स्तर पर भारत में बौद्ध धर्म को सफलता नहीं मिली तथा धीरे-धीरे इसका पतन प्रारंभ हो गया जिससे स्त्रियों की शिक्षा प्रभावित हुई। लेकिन वैदिक परंपरा का सर्वथा लोप किसी युग में नहीं हुआ। उच्च एवं कुलीन वर्ग की स्त्रियों को कम या अधिक रूप में शैक्षिक अवसर प्राप्त होते रहे। जनश्रुति है कि कालिदास की पत्नी विद्योतमा विदुषी महिला थी एवं उसने शास्त्रार्थ में पंडितों को हराया था। इसी तरह कादंबरी की नायिका महाश्वेता का यज्ञोपवीत धारण करना उसके विद्या अध्ययन का प्रतीक है। 'द क्लासिकल एज' में यू.एन. घोषाल ने लिखा है कि ''गुप्त काल में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे, उन्हें संपत्ति में अधिकार था, स्त्रियाँ न तो पर्दा करती थीं, न अलग उठती-बैठती थीं, अगर उस समय पर्दा प्रथा होती तो चीनी यात्री ह्वेनसांग इसका उल्लेख अवश्य करता'' (घोषाल, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 239)।

किंतु गुप्त काल में स्त्री शिक्षा की क्या व्यवस्था थी इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। 8वीं शती के आसपास विदेशी आक्रांताओं के हमलों के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बुरी तरह से प्रभावित हुई। इसके कारण उनमें असुरक्षा की भावना घर कर गई और वे घर की चारदीवारी में सिमट कर पुरुषों पर निर्भर हो गईं जिससे स्त्री एवं पुरुष के मध्य शैक्षिक अवसरों की असमानता उत्तरोत्तर और बढ़ती गई।

मध्यकाल में मुसलमानों की पर्दा प्रथा ने तो स्त्रियों की शिक्षा पर लगभग पूर्णरूपेण पर्दा ही डाल दिया। हाँ, इतना ज़रूर था कि सुविधा संपन्न उच्च वर्गों की स्त्रियों को घर पर ही थोड़ी बहुत नैतिक सदाचार की शिक्षा दी जाती थी। जैसाकि युसूफ हुसैन

ने अपनी पुस्तक 'ग्लिम्पसेज ऑफ मेडिवल इंडियन कल्चर' में लिखा है कि ''निजी घरों में बालिकाओं को ही धार्मिक शिक्षा देने के लिए मकतब थे जहाँ अधिक आयु की स्त्रियाँ उन्हे कुरान, गुलिस्ता, वोस्ता और सदाचार की पुस्तकें पढ़ाती थी'' (हुसैन, 1958, पृ. 97)।

ब्रिटिश शासन काल में भी पुरुषों की शिक्षा पर ही अत्यधिक ध्यान दिया गया, क्योंकि अंग्रेज़ अपने शासन कार्य के लिए कुशल लिपिक तैयार करना चाहते थे। एडम ने उस समय की स्त्री शिक्षा का उल्लेख करते हुआ लिखा है कि ''समस्त स्थापित शिक्षण संस्थाएँ पुरुषों के लाभार्थ हैं, समस्त स्त्री जगत् अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहा है'' (एडम 1836, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 241)।

इस समय स्त्री शिक्षा की दिशा में ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचारकों ने अपने लाभार्थ कुछ प्रयास किया जिसका सीमित लाभ एंग्लो इंडियन और पारसी समुदाय की महिलाओं तक ही सीमित रहा। हंटर कमीशन 1882 की रिपोर्ट बताती है कि ''अत्यंत प्रगतिशील प्रांत में भी अधिकतम दो प्रतिशत बालिकाएँ ही शिक्षा प्राप्त कर रही थीं'' (हंटर कमीशन 1882, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 241)।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान काल में राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, श्रीमती एनी बेसेंट, ज्योतिबा फुले, महर्षि कर्वे के प्रयासों से स्त्री शिक्षा की दिशा में प्रगति हुई, परंतु अभी भी शैक्षिक अवसर सभी वर्गों की स्त्रियों को प्राप्त नहीं थे तथा शैक्षिक अवसरों तक पहुँच में व्यापक लैंगिक विभेद था। लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति संबंधी सरकारी प्रस्ताव 1904 यह स्पष्ट करता है कि ''उस समय 40 में से केवल 1 लड़की किसी प्रकार से स्कूल में जाती थी'' (कर्जन 1904, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 242)।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा की दिशा में किए गए प्रयासों में तीव्रता आई और सभी को समान शैक्षिक अवसर प्राप्त कराने के प्रति संवैधानिक रूप से प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15(1) यह व्यवस्था करता है कि ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा'' (सरकार एवं मुनीर, 2007, पृ. 12)।

इस प्रकार संविधान द्वारा लैंगिक विभेद का प्रतिषेध करते हुए समान रूप से स्त्री एवं पुरुष दोनों को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। इतना ही नहीं, संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अनुसार ''इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य की स्त्रियों और बच्चों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी'' (सरकार एवं मुनीर, 2007, पृ. 12)।

राज्य को संविधान द्वारा स्त्रियों एवं बच्चों के कल्याणार्थ विशेष कार्यक्रमों एवं सुविधाओं की व्यवस्था करने की भी स्वतंत्रता दी गई है। 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 की धारा 2 द्वारा अंतः स्थापित अनुच्छेद 21 (क) यह उपबंध करता है कि ''राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, उस प्रकार की रीति से जैसा राज्य विधि अनुसार अवधारित कर सकेगा, की व्यवस्था करेगा'' (सरकार एवं मुनीर, 2007, पृ. 26)। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार समान रूप से बालकों एवं बालिकाओं दोनों को प्राप्त है तथा राज्य प्राथमिक शिक्षा अपने संसाधनों के अनुरूप अनिवार्य रूप से बालक एवं बालिका दोनों को समान रूप से उपलब्ध कराएगा।

इतना ही नहीं, 86वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 की धारा 4 द्वारा अंतः स्थापित अनुच्छेद 51क(ट) यह उपबंध करता है कि ''जो माता-पिता या संरक्षक हैं या जैसी भी स्थिति हो, छह से चौदह वर्ष की आयु के बीच का प्रतिपाल्य है, शिक्षा के लिए व्यवस्था करने का अवसर दिलाए'' (सरकार एवं मुनीर, 2007, पृ. 39)। इस प्रकार प्रत्येक अभिभावक का यह नैतिक एवं संवैधानिक कर्तव्य है कि वह अपने सभी बच्चों को समान रूप से, चाहे वे बालक हो या बालिका कम से कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य उपलब्ध कराए।

संविधान में स्त्री एवं पुरुष सभी को शैक्षिक अवसरों के समानता की गारंटी भले ही दे दी गई हो परंतु व्यावहारिक धरातल पर वस्तुःस्थिति कुछ और ही है, क्योंकि व्यावहारिक जीवन संविधान के मात्र सैद्धांतिक नियमों से ही नहीं वरन् व्यक्तियों की सोच, उनकी परिस्थिति, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, धर्म, रूढ़ियों एवं आदतों से संचालित होता है।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता क्यों?

समय-समय पर अनेक शिक्षा आयोगों एवं गणमान्य व्यक्तियों ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व को अपने-अपने अनुसार रेखांकित किया है। हंटर कमीशन या भारतीय शिक्षा आयोग, 1882 ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है कि ''मानव संसाधनों के संपूर्ण विकास के लिए, परिवार के सुधार के लिए तथा शैशवावस्था के अत्यंत संवेदनशील वर्षों के दौरान बच्चों के चरित्र को गढ़ने के लिए स्त्रियों की शिक्षा तो पुरुषों की शिक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है'' (हंटर कमीशन 1882, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 241)। इसी तरह विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948 ने कहा है कि ''शिक्षित स्त्री के बिना शिक्षित पुरुष हो ही नहीं सकता, यदि पुरुषों और स्त्रियों में से केवल किसी एक के लिए सामान्य शिक्षा का प्रावधान करना हो तो यह अवसर स्त्रियों को दिया जाना चाहिए, क्योंकि तब यह शिक्षा स्वयंमेव अगली पीढ़ी को प्राप्त हो जाएगी'' (GOI, 1949, p. 393)।

1963 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने वनस्थली विद्यापीठ में अपने भाषण में इसी तथ्य को दुहराते हुए कहा था कि ''लड़कों की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है, परंतु लड़की की शिक्षा संपूर्ण परिवार की शिक्षा है'' (नेहरू 1963, अग्निहोत्री 2010 द्वारा उद्धृत, पृ. 233)।

इतना ही नहीं, संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव रहे कोफी अन्नान ने भी महिला शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि ''स्वस्थ, शांतिपूर्ण और समतामूलक समाज के विकास के लिए शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक समानता स्थापित करने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए, जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक स्वास्थ्य, सामाजिक एवं विकास संबंधी लक्ष्यों को हासिल नहीं किया जा सकता है, बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार से न केवल आर्थिक उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है वरन् मातृत्व एवं बाल मृत्यु दर में भी कमी लाई जा सकती है'' (अन्नान, मोदी द्वारा सितंबर, 2012, कुरुक्षेत्र में उद्धृत, पृ. 13)।

इन विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं व्यक्तियों के कथनों से यह स्पष्ट होता है कि आज तक हम स्त्री साक्षरता व शिक्षा को विकास, लोकतंत्र और सामाजिक प्रगति की बजाय जनसंख्या नियंत्रण, कौशल विकास, पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन एवं उत्पादकता हासिल करने का जरिया भर मानते रहे हैं तथा मुकम्मल मानव संसाधन विकास के लिए शैक्षिक प्रक्रियाओं में लैंगिक समानता के मुद्दे की अहमियत को समझने के प्रति गंभीर नहीं रहे हैं। हम स्त्रियों की शिक्षा को एक साधन के रूप में देखते रहें हैं न कि स्वयं में साध्य के रूप में।

10 दिसंबर, 1948 के सार्वभौम मानव अधिकारों के घोषणा पत्र का अनुच्छेद-26 यह उपबंध करता है कि ''सभी को शिक्षा का समान अधिकार है। कम से कम प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य है... शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं को सुदृढ़ करना होगा'' (चानना, 2008, द्वारा उद्धृत, पृ. 193)।

आज पाँच दशक बाद भी हम स्त्री एवं पुरुष दोनों के समान व्यक्तित्व के विकास के इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल क्यों नहीं हो पाए हैं? हमें इस पर तार्किक दृष्टि से गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

शैक्षिक अवसरों तक स्त्रियों की पहुँच सीमित क्यों है?

यदि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शैक्षिक अवसरों तक सीमित पहुँच के कारकों की छानबीन की जाए तो हम पाते हैं कि सबसे प्रबल कारक तो समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता का वर्चस्व है। सर्वप्रथम, लड़कियाँ विद्यालय जाएँ या न जाएँ, इसके निर्धारण में परिवार का मुखिया अहम भूमिका अदा करता है। इस प्रकार लैंगिक समानता

एवं समान शैक्षिक अवसरों की प्राप्ति में परिवार की विचारधारात्मक कठिनाइयाँ बहुत मायने रखती हैं। आज भी भारतीय समाज में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पुत्रों को पुत्रियों की तुलना में ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। पुत्र को बुढ़ापे की लाठी और पुत्री को दूसरे की अमानत के रूप में देखा जाता है। तेलुगु की एक कहावत इसी मानसिकता को दर्शित करती है ''लड़की का पालन करना दूसरे के आँगन में पौधे को पानी देने के बराबर है'' (एन.सी.आर.टी., 2006, पृ. 50)।

आशारानी वोहरा ने भी अपनी पुस्तक 'आधुनिक समाज में स्त्री' में इसी मानसिकता का सजीव चित्रण कुछ इन शब्दों में किया है --

एक छोटा बच्चा अपनी माँ से मुखातिब हुआ --

''माँ, पम्मी को भी तो दूध दो न, वह फीका भात ही खाए जा रही है''

''और कहाँ है दूध?'' माँ ने उत्तर दिया।

''तो इसमें से ही आधा दे दो। मैं सारा दूध अकेले नहीं पी पाऊँगा,'' माँ!

''बस, बस रहने दो। ज़िद्द नहीं किया करते, मेरे बेटे। चुपचाप दूध पी ले। दूध नहीं पियेगा तो बड़ा होकर थानेदार कैसे बनेगा''?

''तो माँ, पम्मी कुछ नहीं बनेगी क्या?''

''उह! पम्मी क्या बनेगी। उसे तो दूसरे ले जाएँगे।'' (वोहरा, 2005, पृ. 37)।

उक्त अभिकथनों से स्पष्ट है कि बालिकाओं की शिक्षा एवं देखभाल के प्रति अभिभावक उतने संवेदनशील तथा प्रतिबद्ध नहीं होते, जितने बालकों की।

यह सर्व विदित तथ्य है कि पुरुषों की तुलना में भारतीय समाज में स्त्रियों की साक्षरता दर एवं विद्यालय में नामांकन दर कम है जबकि उनकी पढ़ाई छोड़ने की दर अपेक्षाकृत अधिक है। यद्यपि 1947 से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तेजी से भारतीय शिक्षा प्रणाली का विस्तार हुआ है फिर भी स्त्रियों एवं पुरुषों के बीच शिक्षा के समान अवसरों की प्राप्ति का अंतर बहुत बड़ा है। यदि साक्षरता दर को देखा जाए तो 1951 में 27.2 प्रतिशत पुरुष एवं 8.9 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं। इस प्रकार दोनों की साक्षरता दर में 18.3 प्रतिशत का अंतर था। 2011 की नवीनतम जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि ''82.1 प्रतिशत पुरुष एवं 65.5 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर हैं तथा दोनों की साक्षरता दर में 16.7 प्रतिशत का अंतर है'' (M.H.A, CENSUS 2011)

इस प्रकार स्पष्ट है कि 1951 की तुलना में 2011 में मात्र 1.5 प्रतिशत अंतर ही कम हुआ है। इतना ही नहीं, इसमें भी नगरीय एवं ग्रामीण संदर्भ में व्यापक असमानता है। ''2011 में ग्रामीण क्षेत्र में 78.57 प्रतिशत पुरुष तथा 58.75 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं, इस प्रकार दोनों की साक्षरता दर में 19.8 प्रतिशत का अंतर था जबकि नगरीय

क्षेत्र में 89.67 प्रतिशत पुरुष एवं 69.92 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं तथा दोनों की साक्षरता दर में 9.8 प्रतिशत का अंतर था। इसके साथ ही स्त्रियों की साक्षरता दर में क्षेत्रीय असमानता भी दृष्टिगोचर होती है। बिहार में 53.3 प्रतिशत, झारखंड में 56.2 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 59.3 प्रतिशत एवं राजस्थान में मात्र 52.7 प्रतिशत ही महिलाएँ साक्षर थीं''(M.H.A , CENSUS 2011)

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि स्त्रियों को समान रूप से शैक्षिक अवसर प्राप्त नहीं हुए हैं, जिसके कारण उनकी साक्षरता दर पुरुषों की तुलना में निम्न बनी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी दयनीय है। इसके साथ आँकड़े यह भी बताते हैं कि भारत के पिछड़े राज्यों में अभी भी लगभग 50 प्रतिशत स्त्रियाँ निरक्षर बनी हुई हैं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री एवं पुरुष की सामाजिक भूमिकाओं के बारे में समाज की परंपरागत अवधारणा भी स्त्रियों की समान शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है। भारतीय समाज में स्त्रियों की भूमिका के संदर्भ में यह सामान्य अवधारणा है कि इन्हें मात्र गृहिणी के रूप में ही सामान्यतः कार्य करना है और जबकि पुरुष परिवार के लिए अर्थोपार्जन करेगा। यदि स्त्री कोई कार्य नहीं करती है या उसे नौकरी नहीं मिलती है तो कोई बात नहीं, किंतु पुरुष को नौकरी मिलनी ही चाहिए और उसे कोई न कोई कार्य अवश्य करना है।

इस प्रकार स्त्रियों के संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक पूर्वाग्रह और उनकी घरेलू भूमिका पर अत्यधिक ज़ोर दिया जाना उनके समान शैक्षिक अवसरों की प्राप्ति के मार्ग में मुख्य बाधा है। सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियाँ घर के कार्यों में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि विद्यालय जाने के लिए उनके पास समय नहीं होता। और यदि समय निकाल भी लेती हैं तो विद्यालय की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी नहीं निभा पातीं तथा विद्यालय कार्यों को समय पर पूरा नहीं कर पाती हैं क्योंकि उन्हें अपने छोटे भाई-बहनों एवं परिवार के अन्य छोटे बच्चों की देखभाल करने, पालतू पशुओं की देख-रेख एवं उनके लिए चारा तैयार करने, जलावन इकट्ठा करने, खेतों में माता-पिता की मदद करने एवं परिवार के सदस्यों के लिए भोजन बनाने इत्यादि अनेक कार्य करने होते हैं।

आज भी बालक एवं बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने में गुणात्मक विभेद किया जाता है। सामान्यतया ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों को कथित तौर पर अच्छे माने जाने वाले पब्लिक स्कूलों में भेजा जाता है, जबकि बालिकाओं को मात्र शैक्षिक औपचारिकताओं की पूर्ति के लिए ख़स्ताहाल सार्वजनिक सरकारी स्कूलों में। करुणा चानना ने भी अपने अध्ययन में माना है कि ''निजी विद्यालयों के प्राचार्य इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं जब वह कहते हैं कि उनके महँगे सहशिक्षा विद्यालय में यह देखना आश्चर्यजनक नहीं

है कि यहाँ अभिभावक अपने बेटे को तो उनके विद्यालय में भेजते हैं जबकि बेटियों को अपेक्षाकृत सस्ते विद्यालय में भेजते हैं'' (चानना, 1999, पृ. 62)।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग 2010-11 की वार्षिक रिपोर्ट यह प्रदर्शित करती है कि ''जहाँ 1950 में उच्च शिक्षा में प्रति 100 पुरुषों पर मात्र 14 महिलाएँ नामांकित थी वहीं 2010 में 71 महिलाएँ नामांकित थी। स्वतंत्रता के समय उच्च शिक्षा में महिलाओं का नामांकन 10 प्रतिशत था जो 2010 में बढ़कर 41.5 प्रतिशत हो गया है'' (U.G.C, 2012, p.4). आज भी उच्च शिक्षा में पुरुषों एवं महिलाओं के नामांकन में लगभग 17 प्रतिशत का अंतर है जो उच्च शिक्षा में लैंगिक संदर्भ में शैक्षिक अवसरों कि असमानता को दिखाता है।

यू.जी.सी. 2010-11 की रिपोर्ट यह भी बताती है कि ''जहाँ एक तरफ़ केरल एवं गोवा है जिनमें उच्च शिक्षा में महिलाओं का नामांकन क्रमशः 61.2 प्रतिशत एवं 56.8 प्रतिशत है। वहीं दूसरी तरफ़ बिहार में उच्च शिक्षा में महिलाओं का नामांकन 31.2 प्रतिशत हैं'' (U.G.C, 2012, p.5). इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देश के विभिन्न राज्यों में लैंगिक दृष्टि से उच्च शिक्षा के नामांकन में व्यापक विभिन्नता है एवं सभी राज्यों की स्त्रियों को उच्च शिक्षा में समान रूप से शैक्षिक अवसर प्राप्त नहीं हैं।

विद्यालयों का परंपरागत वातावरण, पाठ्यक्रम की पुरानी परिपाटी, शिक्षकों एवं अभिभावकों की संकीर्ण मनोवृत्ति भी स्त्रियों के समान शैक्षिक अवसरों की प्राप्ति के मार्ग में अवरोध पैदा करते हैं।

आज भी विद्यालयों में बालिकाओं की भूमिकाओं के बारे में दक़ियानूसीपन पर ज़ोर दिया जाता है। विद्यालय के पाठ्यक्रमों की विषय-वस्तु के विश्लेषण से पता चलता है कि स्त्री एवं पुरुष संबंधी छवियाँ परंपरागत तर्क पर प्रस्तुत की जाती हैं। इसके साथ ही यह छवि विषयों एवं पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त विद्यालयी गतिविधियों के संगठन के जरिये भी बनाई जाती है। उदाहरणार्थ, लड़कों को गणित, विज्ञान इत्यादि जबकि लड़कियों को संगीत, गृह-विज्ञान इत्यादि विषयों को लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके साथ ही विद्यालयों में लड़के क्रिकेट, फुटबाल इत्यादि पौरुष वाले खेल खेलते हैं जबकि लड़कियाँ खो-खो, टेनिस इत्यादि खेल खेलती हैं।

यू.जी.सी. 2010-11 की वार्षिक रिपोर्ट यह दर्शित करती है कि ''उच्च शिक्षा में संकायवार स्त्रियों का नामांकन कला में 41.21 प्रतिशत, विज्ञान में 19.14 प्रतिशत, वाणिज्य एवं प्रबंध में 16.12 प्रतिशत, शिक्षा में 4.3 प्रतिशत, प्रोद्यौगिकी एवं अभियांत्रिकी में 11.36 प्रतिशत, चिकित्सा विज्ञान में 4.08 प्रतिशत, कृषि में 0.36 प्रतिशत, विधि में 1.91 प्रतिशत एवं अन्य में 1.34 प्रतिशत है'' (U.G.C, 2012. p.52)। उपरोक्त

आँकड़ों से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ उन्हीं विषयों में ज्यादा नामांकित हैं जिनमें कम धन के निवेश की ज़रूरत थी। कुल नामांकन में लगभग आधा नामांकन कला वर्ग में हैं जबकि पुरुष वर्चस्व वाले क्षेत्रों विधि और अभियांत्रिकी में उनका नामांकन अत्यंत कम था। अतः स्पष्ट है कि अत्यधिक आर्थिक निवेश वाले विषयों में स्त्रियों को पुरुषों के समान शैक्षिक अवसर प्राप्त नहीं हैं। एन. जयराम ने अपने अध्ययन में पाया कि ''महिलाओं में उच्च शिक्षा के तीव्र विस्तार के लाभ मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में उच्च सामाजिक तबके और उच्च जाति के समूह की महिलाओं तक ही सीमित हैं।'' (जयराम, 1987, पृ125) ।

महिला शिक्षा के लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक आयाम है, अभिभावकों का व्यवसाय जो कि उच्च शिक्षा में महिलाओं के दाख़िले को प्रभावित करने वाला प्रबल कारक है। अनेक अध्ययनों में पाया गया कि महिला विद्यार्थियों की संख्या में अधिकांश संख्या वरिष्ठ प्रशासनिक और प्रबंधकीय कर्मचारियों, वरिष्ठ पेशेवरों तथा उद्योगपतियों के परिवारों से थीं।

महिलाओं के समान शैक्षिक अवसरों के मार्ग में आज सबसे बड़ी बाधा सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक सहायता व्यवस्था का अभाव है। आज समाज में दुराचार, छेड़छाड़ तथा आपत्तिजनक शब्दों का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो 2012 की रिपोर्ट बतलाती है कि ''वर्ष 2011 में 24206 मामले दुराचार के, 35565 मामले अपहरण के, 8618 दहेज उत्पीड़न के, 8377 मामले यौन शोषण के तथा कुल 228650 मामले देश के विभिन्न राज्यों में स्त्रियों के उत्पीड़न के संदर्भ में दर्ज़ थे'' (GOI, 2012, p.387).

इस प्रकार वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए बालिकाओं के अभिभावक उनको घर से दूर शिक्षा ग्रहण करने को भेजने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं हैं, क्योंकि यदि उनकी लड़की के साथ कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटित हो जाता है तो उसका सामाजिक कलंक उसे जीवन भर ढोना पड़ता है। समाज आज भी स्त्री को अपनी प्रतिष्ठा के घेरे से मुक्त नहीं कर सका है, जबकि पुरुष के संदर्भ में ऐसी कोई बात नहीं है। यही कारण है कि अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का नामांकन तो उच्च शिक्षा में करा दिया जाता है, किंतु वे मात्र परीक्षा के समय ही विद्यालय से मुख़ातिब हो पाती हैं और किसी तरह परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रमाण पत्र प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य होता है, न की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा। उदाहरणार्थ ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर ऐजुकेशन की पायलट रिपोर्ट बताती है कि ''दिल्ली विश्वविद्यालय में सत्र 2011 में दूरस्थ शिक्षा में परास्नातक स्तर पर मात्र 291 पुरुष, जबकि 787 महिलाएँ नामंकित थीं'' (M.H.R.D.

2012, p.17).

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत फार्म भर कर घर बैठे शिक्षा ग्रहण करने में स्त्रियों का अनुपात पुरुषों से ज़्यादा है। इस प्रकार भयमुक्त वातावरण एवं निकट विद्यालयों की अनुपलब्धता भी महिलाओं की समान शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है।

बाल विवाह भी स्त्रियों के समान शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। सामान्यतया ग्रामीण क्षेत्रों में माता-पिता पुत्रों की तुलना में पुत्रियों की शादी के प्रति ज़्यादा चिंतित रहते हैं। विवाह के पश्चात् स्त्रियाँ पारिवारिक कार्यों एवं बच्चों की देख-रेख में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि उनके लिए आगे पढ़ना काफ़ी दुष्कर कार्य होता है। उन्हें तमाम पारिवारिक, सामाजिक संरचनाओं से अपना संतुलन स्थापित करना पड़ता है, इसके बावजूद समय-समय पर उन्हें अनेक ताने सुनने पड़ते हैं, जबकि पुरुषों की शादी यदि बचपन में हो जाए, तो भी उन्हें आगे पढ़ने में कोई ख़ास बाधा नहीं आती।

''यूनिसेफ की स्टेटस ऑफ द वर्ल्ड चिल्ड्रेन, 2012 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में होने वाले कुल विवाहों में क़रीब 40 प्रतिशत बाल विवाह होते हैं तथा 20-24 साल की 22 प्रतिशत महिलाएँ अपने पहले बच्चे को 18 साल से कम उम्र में जन्म देती हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2005-06) के अनुसार 18 साल से पहले 20-24 वर्ष आयु वर्ग की 45.5 प्रतिशत युवतियाँ विवाहित हो चुकी थीं। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के 'फेमली वेलफेयर स्टेटिस्टिक्स 2012 के अनुसार 18 साल से कम उम्र की बालिकाओं की शादी के मामले में ग्रामीण भारत नगरीय भारत से तीन गुना आगे है'' (तहलका, 2013, पृ. 38)।

बाल विवाह के साथ ही दहेज की कुप्रथा भी स्त्रियों की पुरुषों की तुलना में शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है। इस विभत्स्यकारी समस्या के कारण कितने ही माता-पिता ऐसे होते हैं जो अपनी पुत्री को जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित कर देते हैं। 0-6 वर्ष आयु वर्ग में, बाल लिंगानुपात की स्थिति और भी चिंताजनक है। जहाँ 1961 में यह 976 था वहीं 2011 में यह घटकर 914 हो गया है। ये आँकड़े बालक-बालिका में होने वाले विभेद एवं माता-पिता की दहेज की चिंता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। अभिभावक लड़की के जन्म के समय से ही उसके विवाह के लिए धनार्जन शुरू कर देते हैं और इस दहेज में दी जाने वाली राशि की प्रतिपूर्ति एक तरह से उन पर किए जाने वाले शैक्षिक निवेश में कटौती करके की जाती है, जिससे वे बालकों की तुलना में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सामान्यतया नहीं प्राप्त कर पातीं।

इसके साथ ही विद्यालयों में बालिकाओं के अनुकूल आधारभूत सरंचनाओं का अभाव भी शैक्षिक अवसरों तक उनकी पहुँच को सीमित करता है। ASER की 2011 की रिपोर्ट यह दर्शित करती है कि ''2011 में देश के 43.8 प्राथमिक स्कूलों में ही बालक-बालिकाओं के लिए पृथक् रूप से प्रयोग योग्य शौचालय थे जबकि 22.6 प्रतिशत ऐसे स्कूल थे जहाँ बालिकाओं के लिए पृथक् शौचालय नहीं थे, 15 प्रतिशत स्कूलों में शौचालय तो थे किंतु वे बंद थे तथा 18.6 प्रतिशत स्कूल ऐसे थे जहाँ पृथक् रूप से शौचालय तो थे, लेकिन वे प्रयोग योग्य नहीं थे। इसी तरह देश के केवल 73.5 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों में ही पीने योग्य पानी की उपलब्धता थी, जबकि 9.9 प्रतिशत स्कूलों में पानी की सुविधा तो थी किंतु वह पीने योग्य नहीं था तथा 16.6 प्रतिशत स्कूल ऐसे थे जहाँ पीने के लिए किसी तरह के पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी'' (ASER, 2012, p. 71).

इस प्रकार आँकड़ों से स्पष्ट है कि देश के 56.2 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में अभी भी बालिकाओं के लिए पृथक् रूप से शौचालय की व्यवस्था नहीं है तथा 26.5 विद्यालय ऐसे हैं जहाँ पीने की पानी की अनुपलब्धता है।

इतना ही नहीं, ASER 2011 की रिपोर्ट यह भी दर्शाती है कि देश के विभिन्न राज्यों में आधारभूत संरचना के संदर्भ में व्यापक अंतर विद्यमान है। ''मणिपुर में मात्र 15.3 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 23.4 प्रतिशत, जम्मू कश्मीर में 22.4 प्रतिशत, मेघालय में 33 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पृथक् रूप से बालिका शौचालय है, जबकि मेघालय के 9.9 प्रतिशत एवं मणिपुर के 16.4 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में ही पीने योग्य पानी की उपलब्धता है'' (ASER, 2012, p.72).

इस प्रकार ये आँकड़े दर्शित करते हैं कि देश के विभिन्न राज्यों में बालिकाओं के अनुकूल आधारभूत सरंचनाओं की उपलब्धता में व्यापक रूप से अंतर है। पूर्वोत्तर राज्यों की स्थिति अत्यंत दयनीय है इनमे बालिकाओं के अनुकूल आधारभूत सरंचनाएँ अत्यंत निम्नस्तरीय हैं जिससे शैक्षिक अवसरों तक पहुँच इन बालिकाओं की अन्य राज्यों की बालिकाओं की तुलना में सीमित हैं।

स्त्रियों को समान रूप से शैक्षिक अवसर कैसे प्राप्त हो?

सर्वप्रथम, माता-पिता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाना चाहिए कि लड़की दूसरे की अमानत एवं संपत्ति नहीं वरन् वह भी उनकी संतान है एवं उनके परिवार से उसका संबंध जीवन भर का है। केवल पुत्र ही नहीं, वरन् पुत्री भी माता पिता का जीवन निर्वाह करा सकती है। यदि वह शिक्षित होकर समाज एवं राष्ट्र के लिए एवं अपने लिए कुछ करती है तो इससे उनका भी सम्मान बढ़ेगा। अतः बालक-बालिका दोनों को समान शैक्षिक संस्थाओं में भेजें एवं दोनों को समान रूप से संसाधन एवं

शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराएँ जिससे बालक एवं बालिका के अंदर कभी भी हीन भावना न उत्पन्न हो कि उसके साथ बराबरी का व्यवहार नहीं किया जा रहा है।

वर्तमान समय में स्त्रियों के लिए शिक्षा के महत्त्व को व्यापक अर्थों में समझने की ज़रूरत है। स्त्री शिक्षा केवल सामाजिक विकास का साधन ही नहीं वरन् उनके आत्मसम्मान, ज्ञान एवं स्वयं के विकास का साधन होनी चाहिए।

महिला शिक्षा के संदर्भ में जागरूकता फैलाने एवं सहायता हेतु स्वायत्त महिला समूहों एवं अन्य संगठनों को भी आगे आना चाहिए। मुंबई में 'फोरम अगेंस्ट अप्रेशन ऑफ वीमेन', दिल्ली में 'सहेली', हैदराबाद में 'अस्मिता', बंग्लौर में 'विमोचन', तमिलनाडु में 'पेनुरम्मा इयाक्कम', उत्तर प्रदेश में 'महिला मंच' इत्यादि के द्वारा किए जाने वाले सार्थक प्रयासों से प्रेरणा ली जा सकती है। लघु नाट्य मंचों, नुक्कड़ नाटकों, दूरदर्शन, सिनेमा एवं आकाशवाणी इत्यादि के माध्यम से स्त्री शिक्षा के विविध आयामों एवं महत्त्व को रेखांकित कर लोगों में स्त्री शिक्षा के संदर्भ में जागरूकता लाई जा सकती है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः समाज को साहित्य रूपी दर्पण से उसके वीभत्सकारी स्वरूप को दिखाया जाने की ज़रूरत है। इस दायित्व को हिंदी में कृष्णा सोबती, बंगाली में महाश्वेता देवी, उड़िया में प्रतिमा राय इत्यादि साहित्यकारों ने बख़ूबी निभाया है। इस परंपरा को वर्तमान समय के युवा लेखकों द्वारा और आगे बढ़ाने की ज़रूरत है।

सरकार द्वारा स्त्रियों की शिक्षा को विशेष रूप से बढ़ावा देने के लिए कुछ विशेष छात्रवृत्तियों एवं सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। भारत सरकार द्वारा अपने माता-पिता की इकलौती बालिका को परास्नातक स्तर पर 'इंदिरा गाँधी एकल बालिका छात्रवृत्ति योजना' द्वारा प्रतिमास उसके अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति उपलब्ध कराया जाना इस संदर्भ में एक सार्थक एवं अनुकरणीय पहल है।

इसके साथ ही सामाजिक सुरक्षा एवं सहयोग पूर्ण सामाजिक ढाँचे का विकास किया जाना नितांत आवश्यक है जिससे अभिभावक भयमुक्त होकर उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए बालिकाओं को घर से दूर भेज सकें एवं लड़की भी उन्मुक्त वातावरण में खुली सांस लेते हुए शिक्षा ग्रहण कर सके।

महिलाओं के शैक्षिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करने वाला सबसे प्रबल कारक है उनका बचपन में ही विवाहित हो जाना। अतः आवश्यकता इस बात की है कि माता-पिता लड़की के विवाह को एक भारी बोझ न समझें तथा जैसे-तैसे इससे मुक्ति पाने के लिए ही प्रयत्नशील न होकर उसकी शिक्षा के लिए ज्यादा संवेदनशील हों तथा दहेज की राशि को उसकी शिक्षा में निवेश करें जिससे शायद दहेज की आवश्यकता

भविष्य में न पड़े। बाल-विवाह को रोकने के लिए बनाए गए क़ानूनों का भी कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। राजस्थान सरकार द्वारा लागू 'राजस्थान अनिवार्य विवाह पंजीकरण अधिनियम, 2009' एक अनुकरणीय पहल है। किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में बिना सामाजिक मानसिक बदलाव के क़ानून प्रायः निःप्रभावी ही साबित होंगे।

विभिन्न राज्यों, विभिन्न वर्ग समूहों तथा विभिन्न विषय समूहों के संदर्भ में स्त्रियों के लिए व्यापक शिक्षा नीति बनाई जानी चाहिए जिससे विभिन्न राज्यों की स्त्रियों के मध्य व्याप्त शैक्षिक अवसरों की असमानता, विभिन्न वर्गों की स्त्रियों यथा सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के मध्य व्याप्त शैक्षिक अवसरों की असमानता तथा विभिन्न विषय समूहों यथा कला, अभियांत्रिकी, विधि इत्यादि के संदर्भ में व्याप्त असमानता को समाप्त किया जा सके।

लोगों के सामाजिक एवं राजनीतिक जागरण में मीडिया की भूमिका आज अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भूमंडलीकृत हिंदी या अंग्रेज़ी मीडिया आज फ़िल्मी सितारों एवं उच्च वर्गों की महिलाओं की तो बड़ी तल्लीनता से चर्चा करता है, लेकिन यह भारत की उन ग्रामीण महिलाओं में कोई रुचि नहीं दिखाता है जो स्थानीय शासन के माध्यम से लोकतंत्र को दृढ़ता प्रदान करते हुए सामाजिक बुराइयों का प्रतिकार कर रही हैं। गाँवों में सामंती मानसिकता से लड़ने वाली, बाल-विवाह का विरोध करने वाली, नशे के विरुद्ध जंग छेड़ने वाली, सशक्त महिलाएँ मीडिया में उतनी बड़ी ख़बर नहीं बन पाती हैं, क्योंकि इनके व्यक्तित्व को बाज़ार में बेच कर धन नहीं कमाया जा सकता है। अतः मीडिया को भी वर्तमान परिदृश्य में इस संदर्भ में अपनी भूमिका पर चिंतन करने एवं कुछ नया करने की ज़रूरत है।

निष्कर्ष : शैक्षिक समाजशास्त्र में लैंगिक विभेद के संदर्भ में शैक्षिक अवसरों की समानता का मुद्दा वर्तमान समय में एक ज्वलंत प्रकरण है, जिस पर सार्थक बहस की जरूरत है। आज सामाजिक सरंचनाओं की रूपरेखा की आलोचनात्मक, छानबीन एवं समाज में स्त्रियों की भूमिकाओं तथा उनकी शिक्षा पर खुले मस्तिष्क से विमर्श करने की महती आवश्यकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में परिवार, समाज एवं राष्ट्र से परे रूढ़िवादी परंपराओं एवं संकीर्ण मानसिकता की सीमाओं को लांघते हुए वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में स्त्रियों की शिक्षा एवं भूमिका पर विचार किया जाना चाहिए।

❑

संदर्भ

1. अग्निहोत्री, रवींद्र (2010), आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएँ एवं समाधान (छठा संस्करण), जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी

2. अल्तेकर, अनंत सदाशिव (1973), एजुकेशन इन एंसिएंट इंडिया, वाराणसी, मनोहर प्रकाशन
3. चानना करुणा, (1999, अप्रैल-अगस्त), भारत में प्राथमिक शिक्षा में लैंगिक असमानता : मानवाधिकारों का संप्रेक्ष्य, परिप्रेक्ष्य, 6 (1-2) 62
4. जयराम एन., (1987), हायर एजुकेशन एंड स्टेटस रिटेंस. दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन
5. वोहरा आशारानी, (2005), आधुनिक समाज में स्त्री, दिल्ली, श्री नटराज प्रकाशन
6. समाजशास्त्र परिचय (2006), नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्
7. सरकार एस.एस.एवं मुनीर, जे.जे. (2007), भारत का संविधान 1950, (चतुर्थ संस्करण), इलाहाबाद, एलिया लॉ एजेंसी
8. बालपन में ब्याह, (2013 जनवरी, 31), तहलका, 5(2), 38
9. मोदी अनीता, (2012, सितंबर), महिला शिक्षा : ग्रामीण विकास की आधारशिला, कुरुक्षेत्र, 58(11), 13
10. हुसैन युसूफ, (1954) ग्लिंपसेज ऑफ मेडिवल इंडियन कल्चर, मुंबई, एशिया पब्लिशिंग हाउस
11. ASER Center (2012), Annual status of Education Report (rural), 2011, New Delhi, India
12. Government of India Press, (1949), The Report of The University Education Commission : 1948-1949, Shimla, India
13. Government of India, (2012), Crime in India statistics, 2011, National Crime Record Bureau, Ministry of Home Affairs, New Delhi, India Retrieved November 10, 2014, from http : //ncrb.gov.in
14. Ministry of Human Resource Development, (2011), All India Survey on Higher Education Pilot Report, 2011, Department of Higher Education,Planing,Monitoring & Statistics Bureau, New Delhi
15. Ministry of Human Resources Development, (2012), Report of The People on Education, 2010-11, New Delhi, India
16. Ministry of Home Affairs (2011), Census of India, 2011, Registrar General and Census Commissioner. New Delhi : India Retrieved November 10, 2014, from http://www.Censusindia.Gov.in
17. Secretary, University Grant Commission (2012). Annual Report 2010-11, New Delhi, India, Retrieved November 10, 2014, from http:// www.Ugc.ac.in/…./annual report/annualreport_english 1011.pdf.

मोहिनी कुमारी

महिला सशक्तिकरण एवं महिला अधिकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

महिला सृष्टि निर्माता की अद्वितीय कृति है। महिला के अभाव में सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। महिला का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य विधि है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस युग में नारी का बड़ा समादर था। विवाह का उद्देश्य महज काम-वासना की पूर्ति नहीं, उससे ऊपर पत्नी के साथ मिलकर गृहस्थ-धर्म (यह धर्म ही था, समझौता नहीं) का पालन धर्मानुष्ठान, यज्ञ-संपादन और श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति ही था। घर-गृहस्थी में तो नारी की प्रधानता थी, बल्कि स्त्री के बिना कोई धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान संपन्न नहीं हो सकता था। ऋग्वैदिक काल के प्रथमार्थ में स्त्रियाँ युद्ध द्वारा जीत कर या छीना-झपटी से प्राप्त नहीं की जाती थीं। कन्या का पिता उपयुक्त वर खोजकर (विद्वान ऋषि को प्राथमिकता) सप्तपदी विधि से उसका विवाह-संस्कार करता था।

वेदकालीन समाज पितृसत्तात्मक होने के साथ उसमें पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक वरीयता दी गई। पुत्र-कामना का वर्णन यत्र-तत्र मिलता है। श्रेष्ठ पुत्र-प्राप्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना ही नहीं की जाती थी, बल्कि इसके लिए अवश्वमेघ यज्ञ, पुत्रेष्ठि यज्ञ, पुंसवल संस्कार, नियोग भी कराए जाते थे। लेकिन इसका विशेष कारण था युद्धों में पुरुष हानि की क्षति पूर्ति, जाति-वृद्धि और वंश वृद्धि की कामना। ज्ञानार्जन में जीवन बिताते हुए ऋषिकाएँ बनने वाली कुमारियाँ ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। वे वेद-अध्ययन के साथ अध्यापन भी करती थीं, यज्ञ-कर्म भी करवाती थीं। ऋग्वेद के अनेक सूत्रों की रचना इन ऋषिकाओं या ब्रह्मवादिनियों द्वारा की गई हैं। घोषा, लोपामुखा, अपाला, शचीमोलोमी, वग्मणी, विश्वंभरा आदि प्रसिद्ध नामों में से कुछ कवयित्रियाँ थीं, कुछ शास्त्रज्ञ।

स्वतंत्रता पूर्व भारत में स्त्रियों से संबंधित क़ानून भी बनाए गए एवं स्वातंत्र्योत्तर

भारत में भी महिलाओं के संरक्षण के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली क़ानून और संवैधानिक उपबंधों की व्यवस्था की गई है। निःसंदेह, दांडिक विधान का उद्देश्य है अपराधी को समाज में किसी महिला के चुनिंदा अधिकारों का उल्लंघन के दमन के लिए दंडित करना। फिर भी दांडिक न्याय व्यवस्था के विश्लेषण से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि संवैधानिक और विविध उपबंधों के होते हुए भी महिलाओं के प्रति हिंसा जारी है। वह स्थिति महिलाओं की निरक्षरता, विधिक सेवाओं तक अल्प पहुँच और अपने अधिकारों के प्रति महिलाओं की अज्ञानता के कारण और अधिक जटिल हो गई है।

भारत में महिलाओं की स्थिति संबंधी समिति ने दिसंबर, 1974 में 'समानता की ओर' शीर्षक के तहत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट जो अपने डाटाबेस में मूल्यवान और देश में महिलाओं के प्रति व्यापक और सतत् भेदभाव के प्रस्तुतीकरण में प्रभावशाली है, फरवरी 1975 में राज्य सभा में पेश की गई। 'सभा ने 13 मई, 1975 को इस पर विचार किया और एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें प्रधानमंत्री से आग्रह किया गया कि वह भारतीय महिलाओं पर निरंतर होने वाले आर्थिक और सामाजिक अन्यायों, असमर्थताओं और भेदभावों को यथासंभव समाप्त करने वाले विशिष्ट प्रशासनिक और विधायी उपायों का एक व्यापक कार्यक्रम प्रारंभ करें। 27 मई, 1976 को रिपोर्ट पर लोक सभा में भी विचार किया गया। इसके अतिरिक्त 6 जुलाई, 1977 की रिपोर्ट के क्रियान्वयन पर 'आधे घंटे की चर्चा' भी हुई।

महिला सशक्तिकरण एक वैश्विक विषय है। यह सक्रिय है, बहुस्तरीय प्रक्रिया है जो महिलाओं को अपनी पहचान व शक्ति को सभी क्षेत्रों में महसूस करने के योग्य बनाता है। महिलाओं के साथ सभी क्षेत्रों में असमानता का व्यवहार किया जाता है। महिलाओं के साथ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा, पोषण और क़ानूनी सभी क्षेत्रों में भेदभाव का व्यवहार किया जाता है इसलिए महिलाओं के सशक्तिकरण की ज़रूरत है। महिलाएँ जो कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा कुल किए गए कार्य के 2/3 घंटों तक कार्य करती हैं तो भी कुल विश्व आय का केवल दसवाँ भाग ही उनके हिस्से आता है व एक प्रतिशत से भी कम संपत्ति पर ही उनका अधिकार है। यह आर्थिक वितरण विधि द्वारा निर्मित है, जो भारतीय महिलाओं के संदर्भ में भी सत्य है और ग्रामीण महिलाओं के संदर्भ में तो कटु सत्य है। यह कैसी आज़ादी या बराबरी है? कारण एक नहीं अनेक हैं फिर भी प्रारंभिक तौर पर प्रमुख कारण है -- अधिकार, सिर्फ़ अधिकार की गूँज, अधिकार और कर्त्तव्य का संतुलन नहीं, श्रम और योग्यता से अधिकारों का अर्जन नहीं, अधिकारों की माँग या छीना-झपटी, स्त्री-पुरुष में सहयोग नहीं, प्रतिद्वंद्विता, प्रकृतिदत्त पूरकता नहीं, मात्र बराबरी। एक ऐसी दुनिया जिसमें

स्त्री-पुरुष के अधिकार समान हों, अब हमारी सोच का प्रमुख विषय है। हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल आर्थिक स्थिति बदलते ही पूर्ण परिवर्तन हो जाएगा। यद्यपि मानव विकास क्रम में आर्थिक व्यवस्था एक आधारभूत तत्त्व है किंतु इसके बावजूद नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन की पूरी ज़रूरत है जिसको बदले बिना नई स्त्री का आविर्भाव संभव नहीं होगा।

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा संपूर्ण विश्व के विभिन्न नारीवादी आंदोलन विशेष रूप से तृतीय विश्व के नारीवादी लेखकों के बीच हुए विभिन्न आलोचनात्मक संवादों व वाद-विवादों का परिणाम है। वस्तुतः नारी सशक्तिकरण का प्रश्न बहुआयामी है, किंतु मूल रूप में यह महिलाओं के बुनियादी मानव अधिकारों का प्रश्न है। लोकतांत्रिक मानकों के अनुरूप यह महिलाओं के मूल लोकतांत्रिक अधिकारों का भी प्रश्न है। साथ ही यह मात्र विधि सुरक्षा ही नहीं, प्रदत्त अधिकारों की प्राप्ति के लिए अवसरों की उपलब्धता का प्रश्न है -- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैयक्तिक, सामूहिक, वैश्विक सभी क्षेत्रों में सभी स्तरों पर। वर्तमान भारत में गत कुछ वर्षों में अनेक मंचों से यह प्रश्न इसलिए उठा है कि विगत पाँच दशकों में देश में लोकतंत्र की अनेकानेक उपलब्धियों के बावजूद आधी जन आबादी को जो भी दर्ज़ा मिलना चाहिए था वह उससे वंचित है। महिलाओं के सशक्तिकरण का तात्पर्य उन्हें अधिक शक्ति या सत्ता दिया जाना है अर्थात् महिला का अधिक सुविधापूर्वक कार्य करने के लिए उनमें चेतना एवं उन क्षमताओं का विकास किया जाना ताकि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सहभागिता निभा सकें।

महिला सशक्तिकरण एवं महिला अधिकार

महिला सशक्तिकरण एक गतिशील व बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा महिलाओं के जीवन के प्रत्येक पक्ष में अपनी शक्ति व पहचान की अनुभूति होती है। सशक्तिकरण को सबसे सरल रूप में पुरुष प्रभुत्व की विचारधारा को चुनौती देने वाली शक्ति के पुनः वितरण वाली व्यवस्था में देखा जा सकता है। यह एक ऐसी संरचना व संस्थाओं का परिवर्तन है जो लिंग भेदभाव को पुनर्वलित कर उसे क़ायम रखना चाहती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो नारी को इस योग्य बनाती है कि वे संसाधनों व सूचना स्रोतों पर नियंत्रण कर सके। सशक्तिकरण का अर्थ है सामाजिक न्याय और समता या महिला की स्वतंत्र पहचान या उन्हें इंसान के रूप में स्वीकार करना, घर में उसके लिए बराबर का स्थान होना चाहिए।[1] सशक्तिकरण के अवसरों में बढ़ोत्तरी व समानता, विभिन्न समूहों, आयु वर्गों आदि के मध्य समता लाने के लिए किए जा रहे प्रयासों में सामूहिक भागीदारी के साथ-साथ व्यक्तिगत क्षमता, वृद्धिकरण भी शामिल है, इससे मानव की अंतर्निहित

शक्तियाँ व्यक्तिगत और सामाजिक स्तरों पर व्यक्त होती हैं। सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो प्रत्येक को अपने जीवन के निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर क्षमता तथा विश्वास पैदा करती है और उत्पादन के स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित करने के योग्य बनाती है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया प्रत्येक को अपने अधिकारों, उत्तरदायित्वों, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक अवसरों के प्रति जागरूकता पैदा करती है। सामूहिक तथा सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने की क्षमता पैदा करती है।

एक महिला का सशक्तिकरण अनिवार्य रूप से सभी महिलाओं के सशक्तिकरण से जुड़ा हुआ है इसलिए सशक्तिकरण को एक सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मानते हुए इसके संबंध में कुछ सामान्यीकरण किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं --

- महिला सशक्तिकरण एक ऐसी सामाजिक विधि है जो स्त्रियों पर किए जा रहे अत्याचारों व दमन को निष्प्रभावी बनाती है। अगर स्त्रियाँ अपने स्तर पर निर्णायक कार्यवाही नहीं करेगी तो उनके परंपरागत उत्पीड़कों द्वारा इसी प्रकार उनका उत्पीड़न होता रहेगा।
- महिलाओं द्वारा सशक्त होने के निर्णय के माध्यम से ही प्रारंभिक स्तर पर उनके बीच राजनैतिक सक्रियता बढ़ रही है। इसी के द्वारा स्त्रियाँ अपनी कार्यक्षमता का विकास कर समाज व समुदाय में एक अहम भूमिका निभा सकती हैं।
- महिला सशक्तिकरण सामाजिक समता व समान वृद्धि स्तर के समानार्थक शब्द हैं। इसको दूसरों के अधिकारों का हनन करके नहीं बल्कि जहाँ कहीं भी आपसी सहयोग संभव हो, से प्राप्त किया जा सकता है।
- महिला सशक्तिकरण से बहुसंख्यक समाज में स्त्रियों के संदर्भ में परंपरागत मूल्यों का आदर होगा। महिलाओं का उद्देश्य पुरुषों से शक्ति छीनना नहीं है बल्कि उस स्तर पर उनका आदर करना है जिसकी वे वास्तव में अधिकारी हैं।
- महिला सशक्तिकरण मानव स्वतंत्रता और संपूर्ण जनसंख्या सशक्तिकरण के लिए एक आधार है। हालाँकि प्रारंभ में महिलाएँ सामाजिक वास्तविकताओं में अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए पितृसत्तात्मक संरचना को निष्प्रभावी बनाने का प्रयास करेंगी, परंतु वे पुरुषों के अधिकारों को सीमित नहीं करेंगी क्योंकि उनके अधिकारों को कम करके स्त्रियाँ प्रभावशाली रूप से अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकेंगी।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया गया, जिससे नारी के जीवन में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई। संविधान द्वारा

प्रदत्त मूल अधिकार स्त्री व पुरुष दोनों को समान रूप से प्राप्त हुए। साथ ही महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए संसद द्वारा बनाए गए विभिन्न क़ानूनों का निर्माण किया गया। विभिन्न विधानों का संशोधन भी किया जाता रहा है। संविधान का 73वाँ एवं 74वाँ संशोधन महिलाओं के संदर्भ में काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा है। 1950 में नवीन संविधान में स्त्री एवं पुरुषों को समान अधिकार दिए गए परंतु 'हिंदू कोड बिल' पर निर्णय उस समय नहीं लिया गया। लेकिन धीरे-धीरे समाज सुधार की आवश्यकता को देखते हुए 'हिंदू कोड बिल' को खंडों में विभाजित करते हुए पास किया गया। परिणामस्वरूप सभी परंपरागत निर्योग्यताएँ धीरे-धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर होती चली गईं और स्त्रियों को विवाह, संपत्ति, संरक्षण और विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होने तथा सामाजिक रूढ़ियों से छुटकारा पाने का अवसर मिला। ऐसे अधिनियमों में 'हिंदू विवाह अधिनियम 1955', 'हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956', 'हिंदू नाबालिग़ और संरक्षता अधिनियम 1956', 'हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम 1956', 'विशेष विवाह अधिनियम, 1961' आदि प्रमुख हैं।[3]

महिलाओं के संरक्षण हेतु सर्वाधिक प्रभावशाली क़ानून एवं संवैधानिक उपबंधों के बावजूद भी दांडिक न्याय व्यवस्था के विश्लेषण से स्पष्ट संकेत मिलता है कि महिलाओं के प्रति हिंसा लगातार जारी है। समान अधिकारों की इकाई के रूप में परिवार के मिथक और घर की चारदीवारी के अंदर किए गए अपराधों की निजता के कारण संरक्षण की आड़ में घनिष्ठ नाते-रिश्तेदारों द्वारा ही महिलाओं का शोषण किया जाता है। क़ानूनी लड़ाई की लंबी प्रक्रिया, न्याय प्राप्त करने में अंतःग्रस्त व्यय और महिलाओं को उपलब्ध अत्यल्प सहायता व्यवस्था न्याय प्राप्त करने के मार्ग में भारतीय महिलाओं की प्रमुख अड़चनें हैं।[5] अधिकतर मामलों में तो हिंसा की शिकार महिला को वहाँ भावशून्य उपेक्षा अथवा खरी-खोटी टिप्पणी का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो यह सामना और भी अवसादपूर्ण हो सकता है। जब महिलाओं को ग़ैर-क़ानूनी गिरफ्तारी, अवैध ज़बरदस्ती, दुराचरण और हिरासत में लिए जाने पर, सामूहिक बलात्कार अथवा किसी अन्य उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं के मूलभूत मानव अधिकारों के इस प्रकार के घोर उल्लंघन इसलिए होते हैं क्योंकि यौन उत्पीड़न, सताए जाने या घरेलू हिंसा के बारे में पुलिस की कार्यवाही उनके वरिष्ठ अधिकारियों की दकियानूसी मनोवृत्ति से निर्धारित होती है।[6]

21वीं सदी के दौर में महिलाओं की उपरोक्त असंतोषजनक परिस्थितियों के प्रति समाज और सरकार जागरूक हैं, महिला आंदोलन मज़बूत हो रहे हैं और महिलाओं की समस्याओं को राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक कार्यसूचियों में रखने का सतत् संघर्ष चल रहा है। निस्संदेह हर दृष्टि से महिलाओं के जीवन को समझने में काफ़ी परिवर्तन आया है। महिला आंदोलन सतत् रूप से महिलाओं के मुद्दों को सर्वाधिक बहस हेतु सामने

लाकर प्रतिक्रिया दिखाता रहा है। ग्रामीण से लेकर शहरी स्तरों तक और राष्ट्रीय से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक महिलाओं की स्थिति सुधारने के तमाम प्रयास किए गए हैं, उनके सशक्तिकरण की कोशिशें की गई और काफ़ी हद तक ये कोशिशें कामयाब भी हुई, महिलाओं की साक्षरता जहाँ वर्ष 1951 में हमारे यहाँ 8.85 प्रतिशत थी, वहाँ वर्ष 2001 में यह बढ़कर 54.16 प्रतिशत हो गई। विज्ञान तकनीक और सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ महिलाओं की भूमिकाओं में भी सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। सऊदी अरब में जहाँ कभी महिलाओं पर वाहन चलाने पर प्रतिबंध थे, वर्तमान में महिलाएँ विमान तक उड़ा सकती हैं। परिवार में महिलाओं के निर्णयों को महत्त्व दिया जाने लगा है। तमाम पारस्परिक अंधविश्वास ध्वस्त हुए हैं और कई रूढ़ियाँ कमज़ोर पड़ी हैं। कुछ इस्लामिक देशों में महिलाओं ने अपनी क़ैद और अलगाव के प्रतीक बुर्के को फेंक कर अपनी आज़ादी के लिए आवाज़ बुलंद की है। हमारे यहाँ महिलाओं के हितों को ध्यान में रखकर घरेलू हिंसा के ख़िलाफ़ क़ानून को काफ़ी गंभीरता से लिया जा रहा है। 'घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005' के अंतर्गत घरेलू हिंसा का स्पष्टीकरण किया गया है। एक भी लड़की को शिक्षा से वंचित रखने की कीमत अकेले उस लड़की को नहीं बल्कि उसके परिवार, समाज व देश को चुकानी पड़ती है। 'सर्व शिक्षा अभियान' ग्रामीण महिलाओं से शिक्षा को प्रोत्साहन करके शिक्षा के स्तर में सुधार दर्शाएगा। 'हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005' पारित किए जाने से यह संभव हुआ है कि महिलाएँ पैतृक संपत्ति में अपने हक़ का क़ानूनी दावा कर सकती हैं। महिलाओं में सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे वह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सके। महिला सशक्तिकरण से पूर्व 'महिला अस्तित्व' की रक्षा की जानी ज़रूरी है।

महिला अधिकार संरक्षण की भूमिका

भारत के संविधान में सरकार द्वारा पुरुषों और महिलाओं के बीच भेदभावपूर्ण व्यवहार करने को पूर्णतया निषिद्ध ठहराया गया है।[8] संविधान ने प्रत्येक महिला नागरिक को किसी दुकान, सार्वजनिक रेस्तराँ, होटल तथा सार्वजनिक मनोरंजन के अन्य किसी स्थान में प्रवेश करने के मौलिक अधिकार को प्रत्याभूत किया है, भले ही इन स्थानों के स्वामी व्यक्ति-विशेष हों। इसी प्रकार पूर्णतया या अंशतः सरकारी निधि द्वारा अनुरक्षित किसी अन्य सार्वजनिक स्थल के प्रयोग के संबंध में महिला नागरिकों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है। निर्णय लेने वाली संस्थाओं में महिलाओं की पहुँच और भागीदारी को बेहतर बनाने के लिए 1992 में संविधान में संशोधन किया गया ताकि पंचायतों और न्यायपालिकाओं में 33 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए जा सकें,[10] इसे हमारे देश में महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ा क़दम माना जा रहा है।

जब हम नारी सशक्तिकरण की बात करते हैं तो केवल पुरुष मानसिक अथवा सामाजिक मान्यता के परिवर्तन की ही बात नहीं करते, बल्कि क़ानूनी आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की भीषण असमानता की भी बात करते हैं। कथाकार मृदुला गर्ग ने अपने एक आलेख में इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है -- ''किसी क़ानून, राजनैतिक, आर्थिक अधिकार का मामला तभी सार्थक हो सकता है जब उसे सामाजिक स्वीकृति भी मिले। आपसी संबंधों में और परिवार के भीतर होने वाले अन्याय और उत्पीड़न के लिए यह और भी ज़रूरी है। वरन् अधिकार स्वयं शोषण का माध्यम बन जाता है। स्थिति यह है कि नारी के पास अधिकार तो है पर निर्णय लेने का सामर्थ्य नहीं है। आर्थिक सक्षमता के बावजूद स्थिति में बदलाव नहीं आ पाता क्योंकि नारी स्वयं को निर्णायक शक्ति नहीं मान पाती। नारी सशक्तिकरण के दो आयाम हैं -- पहला, पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा उसकी स्वीकृति तथा दूसरा स्वयं के द्वारा स्वयं की स्वीकृति। पहली स्वीकृति में परिवार परिवेश, शिक्षा, क़ानून, संविधान सभी की भूमिका सम्मिलित है और दूसरी में आत्मविश्वास और आत्मनिर्णय की क्षमता का विकास है। इन सभी क्षेत्रों का समन्वय और सामंजस्य ही स्त्री को सशक्त बना सकता है समाज और देश की एक महत्त्वपूर्ण इकाई बना सकता है, परंतु सदियों की जड़ मानसिकता में परिवर्तन बहुत धीमा है।''[13]

सरकार की भूमिका

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया गया, जिससे नारी के जीवन में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई। संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार स्त्री व पुरुष दोनों को समान रूप से प्राप्त हुए। साथ ही महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए संसद द्वारा बनाए गए विभिन्न क़ानूनों का निर्माण किया गया, विभिन्न विधानों का संशोधन भी किया जाता रहा है एवं भारत सरकार द्वारा महिलाओं के विकास तथा कल्याण के लिए अनेक योजनाओं का संचालन भी किया जाता रहा है। स्वतंत्रता उपरांत महिला सशक्तिकरण के प्रयास किए गए जिसमें प्रमुख हैं[14] :--

- संवैधानिक व्यवस्थाएँ
- राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन।
- राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना
- महिला अधिकारिता वर्ष 2011
- महिलाओं में शिक्षा प्रसार
- आर्थिक जीवन में प्रगति
- पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि

- राजनैतिक जागृति
- महिला विकास एवं सशक्तिकरण के लिए विशेष योजनाएँ

महिलाओं के प्रति हिंसा अनियंत्रित बनी हुई है, महिलाओं के विरुद्ध लगभग एक तिहाई अपराध परिवारों के अंदर घटित होते हैं। परिवारों के अंदर और बाहर छेड़छाड़ के 25 प्रतिशत अपराध हैं।[16] जब अपराध परिवारों के एकांत में होते हैं, तो क़ानूनी निदान लगभग असंभव हो जाता है। ऐतिहासिक न्यायिक निर्णय हुए हैं, जैसे महिलाओं के विरुद्ध हवालाती हिंसा और यौन उत्पीड़न के संबंध में। यद्यपि ऐसे निर्णय निश्चय ही न्यायपालिका की महिलाओं के मामलों के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता दर्शाते हैं, विशेषकर बलात्कार मामलों में कुछ निर्णयों के संदर्भ में न्यायिक विरोधाभास के उदाहरण हैं। जाँच प्रक्रियाएँ और क़ानून का प्रवर्तन, न्यायालयों का रवैया तथा साक्ष्य लेने के तरीके आदि क्षेत्र हैं, जिनमें गहन समीक्षा की आवश्यकता है।

जब किसी महिला को अपने समुदाय, उसकी अपनी जाति/धर्म के लोगों द्वारा सताया जाता है या उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है तो इसका निष्कर्ष अनिवार्यतः यही निकलता है कि समूहों, संस्थागत नेटवर्कों अथवा समुदाय द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध जो खेल खेला जाता है उनमें महिलाओं को सदा-सदा से और सतत् रूप से कठपुतली बनाए रखा जाता है। अत्यधिक तनाव और संघर्ष की इस प्रक्रिया में महिला का जीवन, सम्मान और प्रतिष्ठा दाव पर लगी होती है। ताकत का यह खेल एक सामंती समूह पर दूसरे समूह का अथवा एक समुदाय का दूसरे समुदाय को पुरुषोचित शक्ति दर्शाने के लिए बार-बार खेला जाता रहा है। अतः एक समूह/समुदाय को पाठ पढ़ाने के लिए दंड का भागी महिलाओं को होना पड़ता है।[18]

निष्कर्ष एवं सुझाव

महिलाओं के अधिकारों हेतु सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं एवं महिलाएँ भी अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं। परंतु इस सबके बावजूद स्थिति विपरीत बनी हुई है। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में लगातार इजाफा हुआ है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए। प्राथमिक तौर पर उन्हें शिक्षित किया जाना ज़रूरी है। दूसरे, आर्थिक स्वतंत्रता के लिए महिलाओं को अनौपचारिक एवं औपचारिक -- दोनों क्षेत्रों में उनका हिस्सा मिलना चाहिए। तृतीय, क़ानून और धर्म के अधीन महिलाओं के अधिकारों की जानकारी दी जानी चाहिए। धर्म की अक्सर ग़लत व्याख्या की जाती है और महिलाओं के साथ दूसरे दर्ज़े के नागरिकों की तरह व्यवहार किया जाता है। चतुर्थ, सरकार के हर स्तर पर (अर्थात् राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर, पंचायत स्तर) महिलाओं को उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए।

पुलिस अधिकारियों, अभियोजकों और न्यायाधीशों को पदानुक्रम के सभी स्तरों पर स्त्री-पुरुष समानता की शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है जिससे उन्हें महिलाओं के बारे में मौजूदा धारणाओं, मिथकों और घिसे-पिटे नज़रिए से अवगत कराया जा सके और यह बताया जा सके कि वे कैसे निष्पक्ष और न्यायसंगत न्याय प्रदान करके हस्तक्षेप कर सकते हैं। दांडिक न्याय प्रणाली से जुड़े कर्मचारियों को सामान्य तौर पर महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के स्वरूप और ख़ासतौर पर महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा, यौन हिंसा और दहेज अपराधों के स्वरूप पर प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अपराध की शिकार महिलाओं, ग़ैर-सरकारी संगठनों, वकीलों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की भागीदारी, विधि प्रवर्तन एजेंसी और न्यायपालिका द्वारा लैंगिक आधार पर की जाने वाली प्रक्रिया संभवतः दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली को घरेलू हिंसा और अपराधों की शिकार महिलाओं के प्रति अधिक जवाबदेह और संवेदनशील बनाने में मदद करेगी।

❑

संदर्भ

1. आशा कौशिक, नारी सशक्तिकरण : विमर्श एवं यथार्थ, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004 पृ. 131
2. सुषमा सहाय, वुमैन एंड इम्पॉवरमेंट -- एपरोचेज एंड स्ट्रेटिजीज, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998, पृ. 21
3. कमलेश कुमार गुप्ता, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति, बुक एन्कलेव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 42
4. विश्व प्रकाश गुप्त, निहिनी गुप्त, स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएँ, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 4
5. डॉ. पूर्णिमा आडवाणी, जी.यू.सी. शास्त्री, रेणुका मिश्रा, पुलिस अधिकारियों के लिए महिलाओं के प्रति संवेदीकरण का पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय महिला आयोग, नई दिल्ली, 2002, पृ. 197

6-7. वही, पृ. 9

8-9. भारत का संविधान, अनुच्छेद 15, 16

10. भारत का संविधान, अनुच्छेद 343(घ) और अनुच्छेद 343(ग)
11. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो रिपोर्ट, गृह मंत्रालय, 2010
12. वेश्यावृत्ति में महिलाएँ और बच्चे समाजजन्य अत्याचार, राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट, 1995-96, राष्ट्रीय महिला आयोग, नई दिल्ली, पृ. 32

13. आशा कौशिक, नारी सशक्तिकरण : विमर्श एवं यथार्थ, पोइंटर्स पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ. 97
14. कमलेश कुमार गुप्ता, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति, बुक एन्कलेव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 23
15. वही, पृ.4
16. राज्य गृह मंत्रियों के सम्मेलन की कार्यवाही पर रिपोर्ट, 31 जुलाई, 1 अगस्त, 1997, राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, पृ. 59
17. डॉ. सरला गोपालन, समानता की ओर अपूर्ण कार्य, भारत में महिलाओं की स्थिति, 2001, राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, पृ. 333
18. राज्य गृह मंत्रियों के सम्मेलन की कार्यवाही पर रिपोर्ट, पूर्वांक, पृ. 62

महिला विधि भारती के स्वामित्व एवं अन्य जानकारी से संबंधित विवरण
प्रपत्र चतुर्थ (देखिए नियम 8)

1.	प्रकाशन स्थान	दिल्ली
2.	प्रकाशन की अवधि	त्रैमासिक
3.	प्रकाशक का नाम	सन्तोष खन्ना
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	बी.एच/48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-88
4.	मुद्रक का नाम	सन्तोष खन्ना
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	बी.एच/48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-88
5.	सम्पादक का नाम	सन्तोष खन्ना
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	बी.एच/48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-88
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्रिका के स्वामी और भागीदार हैं तथा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर-धारक है।	विधि भारती परिषद बी.एच/48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-88

मैं, सन्तोष खन्ना घोषित करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपरोक्त विवरण सही है।

हस्ता. सन्तोष खन्ना

डॉ. प्रमोद अवस्थी

महिलाओं में समान अधिकार की दृष्टि एवं मानव अधिकार

मानव अधिकारों के रूप में मानव-मात्र की समानता की मांग विश्व के विभिन्न भागों में दीर्घकाल से चली आ रही है। फिर भी उसे व्यावहारिक रूप देने की प्रक्रिया का शुभारंभ 10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र को अंगीकृत करने से ही हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण संकल्प अपने चार्टर की उद्देशिका एवं उसके अनुच्छेद-1 में उल्लिखित व्यवस्थाओं को मूर्त रूप देने के पवित्र उद्देश्य से किया था। उद्देशिका की कंडिका अथवा पैराग्राफ दो में कहा गया है कि "संयुक्त राष्ट्र संघ के हम लोगों ने दृढ़-निश्चय कर दिया है कि आधारभूत मानवीय अधिकारों में मानव की गरिमा एवं महत्त्व में नर-नारियों तथा छोटे-बड़े राष्ट्रों के समान अधिकारों में पुनः आस्था प्रस्थापित करेंगे।'' इसी भावना को और अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हुए चार्टर के अनुच्छेद-1(3) में प्रावधान किया गया है कि "आर्थिक, सामाजिक अथवा मानवीय स्वरूप की अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना, और जाति, लिंग, भाषा अथवा मज़हब या पंथ के आधार पर भेद किए बिना मानवीय अधिकारों एवं आधारभूत स्वाधीनता की अभिवृद्धि करना तथा उन्हें प्रोत्साहन देना संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य प्रयोजन है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ के 51 संस्थापक सदस्यों ने सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन, 1945 के दौरान संघ के चार्टर को अंगीकृत करके एक विश्वव्यापी अंतर्राष्ट्रीय संगठन की प्रस्थापना करते समय सिद्धांततः मानव अधिकारों के औचित्य को स्वीकार करने के विषय में प्रायः मतैक्य थे। तदनुरूप, अपनी-अपनी राष्ट्रीय संरचनाओं अथवा व्यवस्थाओं में उसे व्यावहारिक रूप देने के संबंध में भी उनमें सामान्य सहमति थी। कालांतर में संयुक्त राष्ट्र संघ

में प्रविष्ट होने वाले सभी राष्ट्रों ने उसके चार्टर के प्रावधानों का परिपालन करने का अभिवचन दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि मानव अधिकारों की व्यवस्था को उन्होंने भी औचित्यपूर्ण माना है।

मानव अधिकार घोषणा-पत्र के अंगीकृत हो जाने के उपरांत विश्व के अनेक देशों में महिलाओं के समान अधिकारों से संबंधित मानव अधिकार की माँग बलवती हो उठी। फलतः एक सुदीर्घ अंतराल के पश्चात् 1979 एवं 1981 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने "महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन करने का अभिसमय" (Convention on Elimination of All forms of Discrimination Against Women) अंगीकृत किया।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने जब 10 दिसंबर, 1948 को 'मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र' अंगीकृत किया, उस दौरान भारतीय संविधान सभा देश के लिए नवीन संविधान की रचना का कार्य अत्यंत जागरूकता के साथ कर रही थी। अतः उसने भारत की लोकतांत्रिक गणराज्यवादी शासन-व्यवस्था में वयस्क मताधिकार के सिद्धांत के अंतर्गत महिलाओं एवं पुरुषों की समानता की उद्घोषणा करने वाले अनेक प्रावधान भारतीय संविधान में समाहित किए। इनमें से कतिपय प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण संवैधानिक व्यवस्थाएँ अग्रलिखित हैं :--

1. अनुच्छेद 14 में देश के सभी नागरिकों अर्थात् पुरुषों एवं महिलाओं को विधि के समक्ष समानता तथा विधि का समान संरक्षण देने का प्रावधान किया गया है। इस व्यवस्था में यह तथ्य अंतर्निहित है कि महिलाओं के साथ किसी प्रकार का विधिक भेदभाव नहीं किया जाएगा।
2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(1 एवं 2) में लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किसी भी तरह का भेदभाव करने की मनाही स्पष्ट रूप से की है।
3. अनुच्छेद 16 के अंतर्गत सार्वजनिक जीवन से संबंधित आजीविका प्राप्त करने के क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर दिए जाने तथा लिंग के आधार पर उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव न करने का स्पष्ट प्रावधान किया गया है।
4. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 23 भारतीय नागरिकों को शोषण के विरुद्ध मौलिक अधिकार की गारंटी देता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई की मानवीय व्यापार, बेगार एवं ऐसे ही अन्य बलात् श्रम कराने आदि के कृत्य संवैधानिक रूप से अवैध और निषिद्ध हैं। इसके फलस्वरूप, महिलाओं को उपर्युक्त दुष्कृत्यों का शिकार बनने के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हो गया है। अनुच्छेद 23 में इस बात का भी स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि इन व्यवस्थाओं का उल्लंघन करना एक संज्ञेय आपराधिक कृत्य होगा तथा विधि के अंतर्गत उसे दंडित किया जाएगा।

5. महिलाओं को समानता का मौलिक अधिकार प्रदान करने की दृष्टि से भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का समावेश होना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संविधान के अनुच्छेद 39(क) में प्रावधान है कि "राज्य अपनी नीतियों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन इस रीति से करेगा जिससे पुरुष एवं महिला, सभी नागरिकों को आजीविका प्राप्त करने के समुचित अवसर उपलब्ध हो सकें। तदुपरांत, अनुच्छेद 39(घ) में यह प्रावधान किया गया है कि "समस्त पुरुषों एवं महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाएगा।" इसका अर्थ यह है कि महिला होने के कारण उसे पारिश्रमिक अथवा वेतन देने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 39(ङ) के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि "समस्त महिला एवं पुरुष श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों की सुकुमार अथवा कोमल आयु का शोषण नहीं किया जाएगा तथा उन्हें अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऐसी कोई आजीविका करने पर विवश नहीं किया जाएगा जो उनकी आयु और शारीरिक क्षमता के प्रतिकूल हो।
6. अनुच्छेद 42 के अंतर्गत प्रावधान है कि "राज्य सभी नागरिकों के लिए कार्य की समुचित एवं मानवीय परिस्थितियों का सृजन करेगा तथा महिलाओं को प्रसूतावस्था का लाभ दिया जाएगा।
7. भारत में ऐसे मज़हबी वर्ग तथा जातियाँ एवं उपजातियाँ विद्यमान है जिनमें महिलाएँ अत्यंत पिछड़ी हुई अवस्था में हैं तथा उन्हें समुचित एवं न्यायपूर्ण ढंग से समानता का अधिकार प्राप्त नहीं है। अतः इस दुरावस्था से महिलाओं को मुक्ति दिलाने के प्रयोजन से संविधान के अनुच्छेद 44 में प्रावधान है कि "राज्य देश के सभी नागरिकों के लिए संपूर्ण राष्ट्र में एक समान नागरिक संहिता को लागू करने की दिशा में पग उठाएगा।
8. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-51(क) से (ङ) में व्यवस्था की गई है कि "राज्य महिलाओं के सम्मान एवं गरिमा को हानि पहुँचाने वाली प्रथाओं को निषिद्ध कर देगा।"
9. इसी भाँति संविधान के अनुच्छेद 243 के अंतर्गत ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों, जिला परिषदों, नगर पालिकाओं तथा नगर निगमों आदि में महिलाओं का समुचित प्रतिनिधित्व सुरक्षित करके उन्हें स्थानीय स्वशासन से संबंधित नीति-निर्धारण एवं क्रियान्वयन के प्रयोजन से उसके लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित कर दिए हैं। यह प्रावधान संपूर्ण देश में लागू हो गया है।

विगत कुछ वर्षों में भारत के महिला वर्ग में अपने मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता की अभिवृद्धि हुई है तथा महिलाओं के अनेक ग़ैर-सरकारी संगठन उस दिशा में सक्रिय

हो उठे हैं। उदाहरणार्थ, 1992 में देश के कतिपय ग़ैर-सरकारी संगठनों की पहल पर 'विशाखा बनाम राजस्थान राज्य' वाद में उच्चतम न्यायालय में एक याचिका के माध्यम से प्रस्तुत हुआ था, जो कि विशाखा नामक एक महिला कर्मचारी के यौन-उत्पीड़न से संबंधित था।

उच्चतम न्यायालय के सम्मुख प्रश्न यह था कि क्या महिलाओं को यौन उत्पीड़न से संरक्षण दिलाना वस्तुतः राज्य का दायित्व है? भारतीय संविधान ने यद्यपि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव बरतने का निषेध किया है तथा उन्हें समुचित एवं मानवीय परिस्थितियों में कार्य करने के अधिकार की गारंटी दी है, फिर भी उसमें यौन-उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण करने एवं ऐसे अपराध के लिए दोषी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को दंडित करने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में उच्चतम न्यायालय ने अगस्त, 1997 में अपना ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए घोषणा की, कि भारतीय संविधान में समाविष्ट महिलाओं के मानव अधिकारों की विशद व्याख्या 'महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन करने वाले अभिसमय' के प्रावधानों को दृष्टि में रखकर करना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने अपने इस अति महत्त्वपूर्ण निर्णय में घोषित किया कि यद्यपि अभिसमय स्पष्ट रूप से भारत की देशिक विधि का भाग अथवा अंश नहीं हैं, अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का उपयोग राष्ट्रीय विधि की व्याख्या करने हेतु किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय का अभिमत था कि भारत द्वारा 'महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन करने के अभिसमय' का अनुसमर्थन करने तथा महिलाओं से संबंधित 1995 के बीजिंग विश्व सम्मेलन में लिए गए निर्णयों को भारत द्वारा स्वीकार कर लिए जाने से भारत ने महिलाओं के मानव अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों का परिपालन करने का अभिवचन दे दिया है। अतः इस मानदंड के अनुसार भारतीय महिलाओं को यौन-उत्पीड़न के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना भारत का दायित्व बन जाता है।

उच्चतम न्यायालय ने इस वाद की याचिका प्रस्तुत करने वाले ग़ैर-सरकारी महिला संगठनों की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी उद्यमों के केंद्रों तथा कार्यस्थलों में मानवीय व्यवहार के उचित मानदंड निर्धारित करने के साथ-साथ आवश्यक दिशा-निर्देश भी दिए। इन दिशा-निर्देषों में यौन-उत्पीड़न की शिकायतों के निस्तारण की प्रक्रिया को स्पष्ट कर दिया गया तथा उन्हें उस कालावधि तक निजी क्षेत्र के ग़ैर-सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के सरकारी उद्यमों, कार्यालयों आदि पर बाध्यकारी बना दिया गया, जब तक कि भारत सरकार उस पर समुचित एवं आवश्यक विधि निर्माण करने का अपना दायित्व पूर्ण नहीं कर देती। इन दिशा-निर्देशों में यौन-उत्पीड़न की जिन व्यवस्थाओं का विवरण दिया गया है वे महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव बरतने वाले अपराधों

की उन्मूलन समिति की सामान्य संस्तुति 19 के तदनुरूप है।

अत्यंत दूरगामी महत्त्व के इस न्यायिक निर्णय में यह घोषणा की गई है कि "यौन उत्पीड़न के अंतर्गत सभी अवाँछित यौन-व्यवहार आ जाते हैं -- जिनमें (क) उद्देश्यपूर्ण शारीरिक संकेत तथा शारीरिक संपर्क (ख) यौन-क्रिया की माँग अथवा अनुरोध (ग) यौन व्यवहार संबंधी शब्द-प्रयोग एवं अश्लील टिप्पणियाँ (घ) अश्लील चित्रों एवं साहित्य को दिखलाना तथा (ङ) अन्य किसी प्रकार के यौनाचार से संबंधित अवाँछनीय शारीरिक शाब्दिक अथवा सांकेतिक आचरण सम्मिलित हैं। यदि इन उल्लिखित यौन-उत्पीड़न से संबंधित अनुचित क्रियाओं का शिकार सरकारी, निजी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत किसी महिला को बनाया जाता है तथा उसे यह आशंका सताती है कि ऐसे दुष्कर्म से उसके स्वास्थ्य एवं सुरक्षा को ख़तरा पैदा हो सकता है अथवा वह अपने आपको अपमानित अनुभव करती है तो वह कृत्य यौन-अपराध के अंतर्गत दंडनीय होगा। संबंधित महिला के वैतनिक, स्वैच्छिक अथवा अवैतनिक एवं मानदेय के आधार पर क्रियाशील होने की स्थिति से कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यदि कोई महिला यह अनुभव करती है कि यौनाचार का प्रत्यक्ष अथवा सांकेतिक आमंत्रण अस्वीकार करने से उसे आजीविका प्राप्त होने, पदोन्नति मिलने अथवा कार्यस्थल पर शत्रुतापूर्ण वातावरण हो सकता है तो उसे भी यौन-उत्पीड़न अथवा यौन-अपराध माना जाएगा। यदि किसी महिला को यह भय होता है कि उसके द्वारा यौनाचार आमंत्रण पर आपत्ति करने अथवा उसे ठुकरा देने से उसे दुष्परिणाम भुगतने पड़ेंगे तब भी ऐसे कृत्य यौन-अपराध माने जाएँगे तथा उसके लिए दंड भुगतान होगा।

भारतीय महिलाओं के मानव अधिकारों से संबंधित उच्चतम न्यायालय के इस ऐतिहासिक निर्णय तथा यौन-उत्पीड़न के विषय में सर्वसम्मत दिशा-निर्देश सुनिश्चित कर दिए जाने के बावजूद ग़ैर-सरकारी महिला संगठनों के प्रतिनिधियों की संतुष्टि नहीं हो सकी है। उनका कहना है कि भारत में विभिन्न मज़हबों से संबंधित नागरिकों के निजी अथवा व्यक्तिगत जीवन का संचालन आज भी उनके संबंधित प्रथागत निजी या व्यक्तिगत विधि के आधार पर होता है। हिंदू व्यक्तिगत क़ानून (8) तथा मुसलमान व्यक्तिगत क़ानून इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ये विधि-संहिताएँ पुरुष प्रधान हैं तथा उनमें महिलाओं की स्थिति पुरुषों के समान न होकर हीनतापूर्ण है। इसके अतिरिक्त, भारत सरकार द्वारा 1993 में 'महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव उन्मूलन अभिसमय' का अनुसमर्थन कर देने से भी स्थिति में कोई बड़ा उल्लेखनीय सुधार नहीं हो सका है। इसका कारण यह है कि भारत सरकार ने उक्त अभिसमय का अनुसमर्थन करते समय भी उनके अनुच्छेद 5 (क) में उल्लिखित सांस्कृतिक एवं प्रथागत व्यवहार तथा अनुच्छेद 16(1) से संबंधित विवाह एवं पारिवारिक संबंधों वाले भाग पर अपनी सहमति और स्वीकृति नहीं दी है।

इसके विपरीत, उसने अनुसमर्थन करते समय स्पष्टतम शब्दों में घोषणा की है कि भारत में रहने वाले "किसी भी मानव समुदाय की पहल एवं स्वीकृति के अभाव में वह नागरिकों के व्यक्तिगत मामलों में अहस्तक्षेप की नीति" पर चलता रहेगा। फलतः देश के बहुसंख्यक हिंदू समाज तथा सबसे बड़े अल्पसंख्यक मुसलमान समुदाय के सामाजिक जीवन का नियंत्रण करने वाले विवाह, तलाक़, उत्तराधिकार, संपत्ति, गोद लेने आदि के मामलों में सामान्यतः राज्य द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 के अंतर्गत देश के सभी स्त्री-पुरुषों के लिए संविधान लागू होने के 65 वर्ष व्यतीत हो जाने पर समान नागरिक संहिता की रचना की दिशा में कोई भी पहल न होने से इस विश्लेषण की पुष्टि होती है कि भारत में महिलाओं की समानता का तथ्य औपचारिक अधिक है, व्यावहारिक कम। यहाँ तक कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस विषय में भारत सरकार को सचेत करने का भी कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल सका हैं। अतः 'वीमंस एक्शन रिसर्च एंड लीगल एक्शन फॉर वीमन' की रानी जेठामलानी के इस कथन में पर्याप्त सत्यांश है कि "व्यक्तिगत विधि संहिताओं की विद्यमानता महिलाओं के प्रति भेदभाव पर आधारित है तथा वह महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव बरतने वाले अपराधों के उन्मूलन अभिसमय के अनुच्छेद-141" का उल्लंघन करते है। फलस्वरूप भारतीय महिलाएँ आज भी दूसरे दर्ज़ों की नागरिक बनी हुई हैं। अंत में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भारत में महिला मानव अधिकारों के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

❑

संदर्भ

1. काशीप्रसाद मिश्र एवं गौरीनाथ रस्तोगी : अंतर्राष्ट्रीय विधि का दो खंडों में हिंदी अनुवाद। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1967, पृष्ठ 1072
2. वही, पृ. 1073
3. नार्मन डी. पामर एवं हावर्ड सी. परकिंस : इंटरनेशनल रिलेशंस, तृतीय भारतीय संस्करण, 1970, कलकत्ता, पृ. 388
4. एलाना लैंड्सबर्ग लेविस (संपादित) : ब्रिगिंग इक्वैलिटी होम, दि यूनाइटेड नेशंस डेवलपमेंट फंड फॉर वीमेन, न्यूयॉर्क, 1998, पृ. 6-7
5. कैम्पेन फॉर ह्यूमन राइट्स ऑफ वीमेन, यूनाइटेड पीपुल्स फॉर ह्यूमन राइट्स लखनऊ, 2000, पृ. 2-5

डॉ विभा नायक

यौनकर्मी महिलाओं के साक्षात्कार

अंजुम : मैडम हम भी आपकी तरह पढ़ना चाहते थे पर हमें किसी ने पढ़ाया नहीं। शादी जल्दी हो गई थी। हमारा आदमी जब देखो तब औरतों के चक्कर में पड़ा रहता था। हमने भी उसे छोड़ दिया। अब छोड़ तो दिया पर जाएँ कहाँ, एक दिन ये सुर्जी मिल गई रेलवे स्टेशन पे सो हम उसके साथ यहाँ आ गए। तब से यहीं है।

इन युवतियों से बात करने के बाद हमने इस कोठी की मालकिन से भी बात की। मालकिन क़रीब 50-55 वर्षीय अधेड़ उम्र की महिला थी। उसने हमें इस क्षेत्र के बारे में कई बातें बताईं। नाम न बताने की शर्त पर उस महिला ने बताया कि वह स्वयं एक दलाल के द्वारा यहाँ लाई गई थी। उसने हमें बताया कि पहले यहाँ दलाली बहुत होती थी। लड़कियाँ यहाँ आने को राज़ी नहीं होती थीं। इसलिए दलालों को अपनी कमर कसनी पड़ती थी। लेकिन जब से औरतों ने घर से नौकरी के लिए क़दम बाहर निकाले हैं, यहाँ पर रौनक हो गई है। जो पढ़ी लिखी हैं वो नौकरी करती हैं और जिन्हें पढ़ना-लिखना नहीं आता वो शरीर बेचती हैं।

जब हमने उस महिला से पूछा कि ऐसा सुनने में आता है कि लड़कियों को इस व्यवसाय में लाने के लिए कई तरह से प्रताड़ित किया जाता है, क्या यह सच है? इस पर उसका जवाब था -- मैडम आपने मेरे यहाँ की इन लड़कियों से बात की है और मेरे मिलने से पहले ये आप से मिली हैं, आपको लगा कि इन्हें हमने मारा-पीटा है? कोई निशान देखा आपने इन पर? यहाँ ये सब नहीं होता। हाँ लेकिन और जगहों पर तो होता ही है। जब नई लड़की आती है तो उसे थोड़ा तो तैयार करना ही पड़ता है। हाँ कुछ सिखाने के लिए दो चपत लगाना मारना नहीं होता।

हमारी टीम : लड़कियों को शुरुआत में बलात्कार के माध्यम से तैयार करना पड़ता है?

मालकिन : बलात्कार तो आप कहते हो, जब यहाँ आ ही गई है तो ये सब होता है। जो आप कह रही हो वो नहीं है, मगर एक बार औरत की इज्जत चली

जाए तो वो फिर खुल जाती है। इस धंधे के कुछ उसूल होते हैं। आप पढ़े-लिखे लोग इसे अपनी भाषा में कुछ भी कहो। कली को ही देख लो। जब आई थी तो खूब रोती थी और अब देखो... धंधा है मैडम करना पड़ता है।

हमारी टीम : दलालों की स्थिति आज क्या है? उनका कितना काम है?

काम तो करते ही हैं, नहीं खाएँगे कहाँ से? वैसे यहाँ के दलालों से जादा काम तो इन लड़कियों के खुद के रिश्तेदार करते हैं। इन्हीं के भाई-बंधु करते हैं। इनके आशिक करते हैं, जो इन्हें यहाँ बेच जाते हैं। हमारा भी काम चलता रहता है।

जी.बी. रोड स्थित वेश्या बस्ती में जितनी महिलाओं से हमारी बातचीत हुई वे सभी निम्न वर्ग की महिलाएँ थीं। इस व्यवसाय में आने के उन सभी के अपने-अपने कारण थे। कोई पति के द्वारा परित्यक्ता थी तो किसी को उसके ही माँ-बाप या दूर का कोई रिश्तेदार बेच गया था। कई ऐसी भी थीं जो अपनी मर्ज़ी से यहाँ आई थीं। इन महिलाओं में कंजर और नट घरानों से संबद्ध महिलाएँ भी थीं, जिनके मन में इस व्यवसाय के प्रति किसी भी प्रकार का अपराध बोध नहीं था, क्योंकि कंजर और नट जैसे समुदायों में यह पेशा घृणित नहीं है।

इनके अतिरिक्त यहाँ ऐसी लड़कियाँ भी हैं, जिन्हें उन्हीं के परिजन यहाँ बेच गए थे और अब अपने जीविकोपार्जन के लिए ये महिलाएँ इस व्यवसाय में रम गई हैं। ग़ैर यौनकर्मी घरानों से असंबद्ध इन युवतियों का अपने परिवारों से अब किसी भी प्रकार का संबंध समाप्त हो गया है। इस व्यवसाय में अचानक आने पर आरंभ में अवश्य इन्हें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किंतु शीघ्र ही इन्हें *सिझा लिया जाता* है। 38 नंबर कोठी की मालकिन के शब्दों में कहें तो दो एक चपत तो लगानी ही पड़ती है और सभ्य समाज में किसी महिला से जबरन यौन-संबंध बनाने को जैसे बलात्कार कहा जाता है, *धंधे* की भाषा में वो बलात्कार नहीं है क्योंकि यहाँ जब आ ही गई है, तो यह तो होना ही है। लड़कियों को तो यौनिक वस्तुकरण की त्रासदी झेलनी ही है। इसमें भी यदि वह किसी यौनकर्मी की बेटी है, तो *गिराहकों* की निगाह से नहीं बच सकती। आज नहीं तो कल उसका बलात्कार होना ही है, इससे अच्छा है कि रस्म के तौर पर नथ उतराई की रस्म के रूप में उसके पहले बलात्कार की क़ीमत वसूल कर ली जाए। देह की बस्तियों में ये सब होता है, और इसे बहुत ही सहज माना जाता है।

जी.बी. रोड एक और सच्चाई को उजागर करता है और वह यह कि पुलिस की नाक के नीचे सब कुछ होता है, लड़कियाँ ख़रीदीं और बेची जाती हैं। उनके साथ बलात्कार होता है, हत्या तक हो जाती है किंतु पुलिस कुछ नहीं करती। पुलिस महकमे के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से जब हमने यह सवाल किया कि सब जानते हैं कि स्वामी श्रद्धानंद

मार्ग अनैतिक और अमानवीय गतिविधियों का केंद्र है, फिर कुछ होता क्यों नहीं। पुलिस यदि चाहे तो यह सब बंद हो सकता है। रैड लाईट एरिया जैसी चीज़ का अस्तित्व भी समाप्त हो सकता है, फिर पुलिस कोई कदम क्यों नही उठाती? इस सवाल के जवाब में नाम न बताने की शर्त पर उन्होंने मुझसे कहा था कि रैड लाईट एरिया इसलिए नहीं हटते क्योंकि कोई इन्हें हटाना नहीं चाहता। आपको पता है कि यहाँ बड़े-बड़े लोग आते हैं। अपनी गाड़ियों में आते हैं। इसमें सरकारी लोग भी होते हैं और पुलिस के लोग भी। यदि इनकी बस्तियाँ हटा दी जाएँ तो बताइए कि वो बड़े लोग कहाँ जाएँगे? क्राइम रेट कितना बढ़ जाएगा। भले घर की लड़कियों का घर से निकलना दुर्भर हो जाएगा। दूसरी बात, कि ये बस्तियाँ हैं तो एड्स जैसी बीमारियाँ यहीं तक सीमित हैं। यदि इन्हें हटा दिया गया तो एड्स पूरे देश को संक्रमित कर देगा। अब भी क्या आप यही कहेंगी कि इन बस्तियों को यहाँ से हटा देना चाहिए?

उन्होंने जो कहा वो ग़लत नहीं कहा, क्योंकि यह एक बहुत बड़े समुदाय का सच है। हमारे समाज में अब भी ऐसा माना जाता है कि यौनकर्मी महिलाओं के अस्तित्व से संभ्रांत घरों की बहू-बेटियों की इज्ज़त बची रहती है। किंतु यदि ऐसा ही होता तो फिर तो महिलाओं के साथ बलात्कार की घटनाएँ होनी ही नहीं चाहिए थीं। लेकिन ऐसा होता है। राह चलते लड़कियों के साथ छेड़खानी की घटनाएँ होती हैं। प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले किसी भी अख़बार में ऐसा बमुश्किल ही होता होगा कि उसमें किसी दिन बलात्कार की ख़बरें न छपें। इस संबंध में अपरिचितों की तो छोड़िए परिचितों से भी महिलाएँ हिंसा और यौन-हिंसा की शिकार होती हैं। इस प्रकार यौनकर्मी महिलाओं की बस्तियों के पक्ष में एक तर्क तो ख़ारिज होता है।

दूसरी बात, यह एक भ्रम है कि इन महिलाओं के कारण एड्स जैसी घातक यौन बीमारी एक क्षेत्र-विशेष तक सीमित है। यौनकर्मी महिलाओं के साक्षात्कार से ही इस तथ्य का खुलासा होता है कि जी.बी. रोड स्थित वेश्याबस्ती में आने वाले अधिकांश ग्राहक असुरक्षित यौन-संबधों में ही अधिक रुचि लेते हैं और नई लड़की या यौन उद्योग की भाषा में कहें तो *अनुछुई लड़की को सब ऐसेई पसंद करते हैं।* ऐसे ग्राहक स्वयं तो संक्रमित होते ही हैं, वे अपने साथ नई लड़कियों और घर जाकर अपनी पत्नियों को भी संक्रमित करते हैं। यही कारण है कि देश में एड्स के मामलों में कमी नहीं आई है बल्कि अच्छी-खासी बढ़ोतरी हुई है। इसलिए ऐसा मानना कि यौनकर्मी महिलाओं की बस्तियों के कारण एड्स एक सीमित क्षेत्र तक सीमित है, भ्रम है।

तीसरे, क्या यह मानवतावादी दृष्टिकोण है कि एक बृहत् समाज की सुरक्षा के लिए कुछ महिलाओं को मनुष्य से जीवित वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया जाए, उनसे उनके मन-अनुसार जीवन जीने का अधिकार छीन लिया जाए? और उस पर भी

अन्याय यह कि इन्हें समाज के लिए कलंक मानकर इनसे घृणा की जाए! यदि समाज को स्वच्छ बनाए रखने के लिए इन महिलाओं की यौनिक वस्तु के रूप में इतनी ही आवश्यकता है, तो फिर इनसे घृणा क्यों, इन्हें तो समादर के साथ समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करना चाहिए, इन्हें समाज सेवा के लिए पुरस्कृत करना चाहिए। साथ ही इस व्यवसाय को कानूनी मान्यता देकर युवाओं को इसमें अपना भाग्य आज़माने के अवसर देने चाहिए।

वस्तुतः सच्चाई यह है कि यौनकर्मी महिलाओं के अस्तित्व का समर्थन करने वाले इस प्रकार के निरर्थक तर्क पुरुष समाज द्वारा अपने मुक्त यौनाचरण को तर्कसंगत सिद्ध करने के लिए प्रचारित किए जाते हैं और समाज भी चूँकि पुरुषवादी मानसिकता से अनुकूलित है अतः इन तर्कों को वह सहज ही स्वीकार कर लेता है। किंतु इस प्रकार के तर्कों का समर्थन करने से पूर्व हमें इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि जब तक हम यौनकर्म को समाज के लिए आवश्यक बुराई मानकर इसके अस्तित्व को स्वीकृति देते रहेंगे तब तक यौनकर्म का भी विकास होता रहेगा। समयानुसार इसके नए-नए रूप भी विकसित होते रहेंगे, जैसा कि यौनकर्म के इतिहास में अब तक देखा गया। बात चाहे मौर्य काल की रही हो, अशोक काल या गुप्त काल की रही हो, हर युग में इसे समाज के लिए आवश्यक बुराई मानकर न केवल प्रश्रय दिया जाता रहा बल्कि इसे विनियमित भी किया जाता रहा। किंतु किसी भी काल में इसे समाप्त करने का प्रयास नहीं किया गया। जिसके परिणामस्वरूप हर युग में इसका कोई न कोई नया रूप सामने आता रहा। वर्तमान में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। *''विधि के 64 वें प्रतिवेदन में लिखा है कि वेश्यावृत्ति पर पूरी तरह रोक नहीं लगाई जा सकती। हर देश में कानून ने इसे नियमित करने का प्रयास किया है ताकि विवाह और परिवार की संस्था का अतिक्रमण किए बिना इसे इसकी वैध सीमाओं के भीतर रखा जा सके।''*[1] स्पष्ट है कि जो पुरुषवादी मानसिकता सदियों पहले हमारे समाज को आक्रांत किए हुए थी, आज भी उसमें कोई बदलाव नहीं आया है। इसी कारण पुरुषवादी मानसिकता कानून की आड़ में यही प्रचारित करती है कि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता। किंतु सत्य यह है कि यौनकर्म को समाप्त इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि पुरुष समाज इसे समाप्त नहीं करना चाहता। यही कारण है कि वर्तमान में स्थिति यह हो गई है कि यौनकर्म अब हाई टैक होकर इंटरनेट, और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से किसी न किसी रूप में ज़िंदगियों को प्रभावित कर रहा है और अब तो इसे क़ानूनी मान्यता दिए जाने पर भी विचार किया जा रहा है।

यौनकर्म को कानूनी मान्यता के पक्ष में बात करने वाले प्रायः यह दलील देते हैं कि यौनकर्म में आने की एक उम्र तय कर दी जाएगी जिससे इस व्यवसाय से जीविकोपार्जन

कर रही महिलाओं का शोषण समाप्त होगा, उन्हें भी इज्ज़त और सम्मान का जीवन जीने का अधिकार मिलेगा। साथ ही मानव तस्करी में भी कमी आएगी। कोलकाता में यौनकर्मी महिलाओं की बस्ती *सोनागाछी* में यौनकर्मी महिलाओं की संस्था *दुरबार महिला समन्वय समिति,* यौनकर्म को कानूनी मान्यता दिलाए जाने की वक़ालत करती है। अपने घोषणा-पत्र में उनके तर्क हैं कि ''अन्य व्यवसायों के समान यौनकर्म भी एक प्रकार का व्यवसाय है, जिसे महिलाएँ जीविकोपार्जन के लिए अपनाती हैं। तो जिस प्रकार अन्य व्यवसायों को अनैतिक नहीं माना जाता, इसे भी अनैतिक नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि यह मनुष्य की आदिम आवश्यकता की पूर्ति करता है। इनका यह भी कहना है कि कानूनी दरज़ा मिलने के बाद बाल-यौनकर्म और मानव तस्करी जैसे अपराधों का सफाया किया जा सकेगा।''[22]

किंतु यह जानते हुए कि इस व्यवसाय का एक घिनौना चेहरा यह है कि इसमें 18 वर्ष से कम उम्र की बच्चियों की सबसे ज़्यादा माँग है, यौनकर्म को कैसे वैधानिक क़रार दिया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि क़ानूनी मान्यता मिलने के बाद भी मानव तस्करी के अनुपात में कोई अंतर नहीं आएगा। *मानव अधिकार वॉच* के अनुसार भारत में इस समय लगभग 10 लाख यौनकर्मी महिलाएँ हैं।''[3] ''भारत, थाइलैंड और फिलीपींस को मिलाकर लगभग 1.3 करोड़ बच्चे इस यौन उद्योग में शामिल हैं।''[4] उसमें भी ''16 वर्ष से कम उम्र के बच्चे मुख्य रूप से भारत और पाकिस्तान से तस्करी के द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं।''[5] ''अकेले नेपाल से भारत के बीच यौन कर्म के लिए जिन महिलाओं की तस्करी होती है उनमें से 69 फीसदी महिलाओं की औसत उम्र 12 से 16 वर्ष के बीच होती है।''[6]

दूसरे, यदि यौनकर्म को मान्यता दे दी जाती है, तो क्या हम सभी इन स्थितियों के लिए तैयार हैं कि रिहायशी इलाक़ों में ऐसी कई दुकानें खुलें जिन पर लगे बोर्ड पर सुंदर अक्षरों में लिखा हो कि *हमारे यहाँ वर्ल्ड क्लास यौन सेवा प्रदान की जाती है, कृपया एक बार पधार कर सेवा का मौका अवश्य* दें और केवल इतना ही नहीं, जब नौकरी की तलाश में युवक और युवतियाँ डॉक्टर, इंजीनियर या शिक्षक बनने के स्थान पर यौनकर्मी बनने का स्वप्न सँजोएँगे, तब संस्कृति के वही ठेकेदार जो यौनकर्म को पुरातन व्यवसाय बताकर इसे क़ानूनी मान्यता दिलाने का पक्ष लेते हैं या फिर यौनकर्मी महिलाओं के अस्तित्व को समाज के लिए आवश्यक मानते हैं, क्या कर लेंगे?

निश्चय ही यदि महिलाओं का शोषण रोकना है, उन्हें पुरुष द्वारा प्रचारित परंपरागत वस्तुकृत रूप से मुक्त कराना है तो यौनकर्म को समाप्त करने की आवश्यकता है किंतु यह इतना सरल कार्य नहीं है और सरल इसलिए नहीं है क्योंकि परिणाम को समाप्त करने से सामाजिक न्याय संभव नहीं है। कारण को ही समाप्त करने की आवश्यकता

है और कारण है पुरुष की उच्छृंखलता जिसे वह अब तक अपनी पौरुषीय सहजता के रूप में प्रचारित करता रहा है, जिसका परिणाम स्त्री को अब तक यौनकर्मी या यौनिक वस्तु बन कर भुगतना पड़ा है। स्त्री के विरुद्ध पुरुष द्वारा किए गए शारीरिक ही नहीं मौखिक बलात्कार के भय ने भी स्त्री को लज्जावान और संकोची बना डाला और स्वार्थी पुरुष ने स्त्री की इस असहज स्थिति को उसके स्त्रीत्व के रूप में बखान दिया और स्वयं परमेश्वरत्व का तमगा लगाकर मुक्त यौनाचरण करता रहा। कैसी विडंबना है!

स्थिति पहले जो भी रही हो, अब इसे और ऐसी ही स्थितियों को समाप्त किए जाने की आवश्यकता है। स्त्री के विरुद्ध किए गए किसी भी अपराध की पुरुष को कड़ी से कड़ी सज़ा मिलनी चाहिए। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो कानून में भी संशोधन करना चाहिए। किसी भी स्थिति में बलात्कार के आरोपी को विवाह करने का अधिकार किसी भी शर्त पर न मिलना चाहिए, विवाह की शर्त पर अभियुक्त को बाइज्ज़त बरी कर देना अन्याय है। पुरुष इस प्रकार की स्थितियों का लाभ उठाकर स्त्री को छलता है, इसका उसे दंड मिलना चाहिए किंतु अफ़सोस ऐसा होता नहीं है। न्यायालय भी जब स्त्री और पुरुष के समान कृत्य को स्त्री की उच्छृंखलता और पुरुष की सहजता के रूप में परिभाषित करता है, तो आश्चर्य होता है। यह सब इसलिए होता है क्योंकि हमारे समाज में अब तक इस प्रकार के मुहावरे प्रचलित हैं कि लड़के तो होते ही ऐसे हैं लड़कियों को संभलकर रहना चाहिए। वस्तुतः जब तक ये अनर्गल कुसांस्कृतिक मुहावरे समाप्त नहीं होते, जब तक इन बेतुकी सी लगने वाली छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता, तब तक न तो स्त्री मुक्ति ही संभव है और न ही सामाजिक न्याय के माध्यम से सुधार की संभावना।

❑

संदर्भ

1. संपादक : वर्मा, लाल बहादुर, इतिहासबोध, बी-239, चंद्रशेखर आज़ाद नगर, तेलियर गंज, इलाहाबाद-2110004 पृ. 20
2. There are approximately 10 million prostitutes in India. (Human Rights Watch, Robert I. Freidman, ''India's Shame: Sexual Slavery and Political Corruption Are Leading to An AIDS Catastrophe, The Nation, 8 April 1996)'' By : http://www.paralumun.com/issuesindia.htm
3. India, along with Thailand and the Philippines, has 1.3 million children in its sex-trade centers. 'INDIA FACTS ON PROSTITUTION' By: http://www.paralumun.com/issuesindia.htm
4. India and Paksitan are the main destinations for children under 16 who are trafficked in South Asia. Masako Iijima, ''S. Asia urged to unite against child prostitution,'' Reuters, 19 June 1998

रेनू

दूध में मिलावट पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय

पिछले कुछ दशकों से खाद्य पदार्थों में मिलावट करने का धंधा बहुत ज्यादा बढ़ता जा रहा है। फल-सब्जियों को तो विभिन्न रसायनों द्वारा सींचा जाता ही है, दूध में भी मिलावट की जाती है। दूध तथा दूध से बने पदार्थों में मिलावट का स्तर इतना अधिक बढ़ गया है कि दूध अब जहर हो गया है। मिलावट करने वाले अत्यधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से दूध में साबुन, शैंपू, कास्टिक सोड़ा और अनेक प्रकार के कैमिकल्स का प्रयोग करके दूध की मात्रा को बढ़ाते हैं।

दूध में मिलावट के बढ़ते स्तर को ध्यान में रखते हुए उच्चतम न्यायालय ने 5 अगस्त, 2016 को दिए अपने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि मिलावट करने वालों के लिए आजीवन कारावास के दंड का प्रावधान किया जाए क्योंकि वर्तमान दंड सिर्फ छः महीने की जेल या फिर 1000/- रुपए का जुर्माना होता है। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश माननीय टी.एस. ठाकुर, न्यायाधीश आर. बानुमति तथा यू.यू. ललित की खंडपीठ ने कहा ''भारत में पारंपरिक रूप से शिशुओं/बच्चों को दूध पिलाया जाता है, दूध तथा दूध से बने पदार्थों में मिलावट एक चिंता का विषय है। इससे बचने के लिए कड़े कदम उठाने की आवश्यकता है।'' यह कहते हुए खंडपीठ ने भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (FSSAI) की 2011 की उस रिपोर्ट का उल्लेख किया जिसमें बताया गया था कि बाजार में 68 प्रतिशत से अधिक दूध मिलावटी होता है।

केंद्र सरकार से वर्तमान कानून में संशोधन करने की आवश्यकता पर बल देते हुए खंडपीठ ने कहा ''जब उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा पहले से ही मिलावट करने वालों के लिए आजीवन कारावास तक के दंड की व्यवस्था कर चुके हैं तो इसमें कुछ गलत नहीं होगा कि केंद्र सरकार वैसा ही कठोर क़ानून बनाए जोकि पूरे देश में लागू हो सकेगा।''

हमारे देश के विभिन्न हिस्सों में मिलावटी तथा कृत्रिम दूध के बढ़ते ख़तरे को देखते हुए आवश्यक है कि भावी पीढ़ी के विकास को अवरुद्ध करने वाले मिलावटी दूध के विषय में कुछ कारगर कदम उठाए जाएँ। उच्चतम न्यायालय ने केंद्र तथा राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि वे दूध अपमिश्रण के हानिकारक प्रभावों के संबंध में जागरूकता लाने के लिए विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन करें तथा साथ ही खाद्य प्राधिकारियों को कहें कि वे एक शिकायत तंत्र विकसित करें ताकि जनता अपनी शिकायतें दर्ज करा सकें। केंद्र सरकार मिलावट करने वालों के लिए कठोर कानूनों का प्रावधान करे तो देशभर में उसे लागू करके दूध अपमिश्रण को नियंत्रित किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार के विधि आयोग ने इस विषय पर जनवरी, 2017 के आरंभ में ही केंद्र सरकार को अपना प्रतिवेदन सौंप दिया है। इस प्रतिवेदन में दूध में मिलावट करने वालों के विरुद्ध आजीवन कारावास के दंड की सिफारिश की गई है। उसने दंड (संशोधन) विधेयक, 2017 का एक मसौदा भी तैयार किया है जिसे संसद पास कर उसे क़ानून की शक्ल दे सकती है। क्या संसद इसे इसी बजट सत्र में पारित करेगी?

❑

डॉ. उषा देव

सृष्टिकर्ता की अनुपम कृति नारी-गाथा का दस्तावेज़

श्रीमती सन्तोष खन्ना जी के द्वारा संपादित पुस्तक 'हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार' एक ज्वलंत गंभीर समस्या से संबंधित दो दर्जन से अधिक आलेखों का संग्रह है। लेखकों (लगभग सात) और लेखिकाओं (लगभग सत्रह) ने इस विषय पर अपने विचारों एवं अनुभवों को बड़ी सशक्त, सटीक और मार्मिक भाषा में प्रस्तुत किया है। यह तथ्य तो स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टिकर्ता ने ही नारी शरीर की संरचना कुछ ऐसी की कि उसे ही संतानोत्पत्ति, उसके लालन-पालन आदि में अपनी सारी ऊर्जा लगाना ही अपना मुख्य ध्येय सहर्ष स्वीकार करना होता है। हाँ, सृष्टि-प्रचालन में पुरुष की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पर, नारी-शरीर में पल-पल पल रहे जीव के साथ जो उसका जुड़ाव हो जाता है शायद वही उसे कई प्रकार के अभाव, प्रताड़ना, उपेक्षा, पराधीनता आदि को सहने की अथाह हिम्मत, सब्र भी दे देता है। ठीक है कुछेक पुरुष उसकी पीड़ा को महसूस किया करते हैं, सच में वे महसूस कर सहानुभूति के दो शब्द कह या लिख भी देते हैं; पर अनुभव-गाथाएँ नारी के स्वर को तीखा, कारुणिक एवं रोषपूर्ण बना देती हैं। पीड़ा तो पीड़ा है; उसका हल प्रत्येक को (नारी या नर) स्वयं ही अपने स्तर पर करना होता है और करना होगा।

संपादिका सन्तोष खन्ना जी ने पुस्तक के प्राक्कथन में ही भारतीय समाज में नारी के घर एवं कार्यक्षेत्र में होने वाले उत्पीड़नों (शारीरिक तथा मानसिक) का ख़ाका प्रस्तुत कर दिया है। वैश्वीकरण के इस दौर में लाभ व्यक्ति, समाज, औद्योगिक घरानों को हो रहा है या फिर देश की सरकारों को -- यह कहना आसान नहीं है पर स्त्री वर्ग को क्या-क्या क्षतियाँ उठानी पड़ रही हैं उसका संकेत करते हुए संपादिका कहती हैं ''छोटी-छोटी बच्चियों को भी नहीं बख़्शा जा रहा। (वेश्यावृत्ति, पृष्ठ 8)

'समकालीन हिंदी साहित्य में महिला सरोकार' आलेख में लेखिका डॉ. ममता चौरसिया ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है, ''वास्तव में समकालीन हिंदी साहित्यधारा आधी आबादी (स्त्री-वर्ग) के सच पर पड़े पर्दे को खींचकर उनके हक़ की लड़ाई लड़ने

के लिए आंदोलन करती है। (पृष्ठ 21) वे अपने मंतव्य की पुष्टि के लिए मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम:'; अरविंद जैन के 'औरत होने की सज़ा'; रमणिका गुप्ता के 'मेरे साक्षात्कार'; और 'हादसे' आदि की पंक्तियों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। (पृष्ठ 19-23)

डॉ. साधना गुप्ता ने अपने आलेख '21वी सदी की कविता में महिला सरोकार' में पंकज परिमल की कविता 'लड़कियाँ' की जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं वे निश्चित रूप से पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज की ही नहीं वरन् विश्व के अधिकतम पुरुषों की कुत्सित मानसिकता की द्योतक हैं -- ''मन से बोल्ड शरीर से सुरक्षित होने पर भी / आँखों ही आँखों में क़त्ल की जा रही होती/शरीर से सम्मानित होकर मन से निर्दयता पूर्वक भोगी जा रही होती। (पृष्ठ 26) डॉ. साधना जी ने सच ही कहा है कि पुरुष अपने आधे अंगस्वरूप स्त्री को विकृत कर (शारीरिक या मानसिक यातना देकर) कभी पूर्ण (सफल) न बन सकेंगे। (पृष्ठ 28) सच में ऐसी स्थितियों में व्यक्ति, समाज, देश या फिर विश्व में कल्याण (शिव) या फिर शांति की कामना करना ही क्या, स्वप्न लेना भी व्यर्थ है।

सन्तोष खन्ना जी ने 'साहित्य का भविष्य और भविष्य का साहित्य' आलेख मे शत-प्रतिशत उपयुक्त राय दी है कि भविष्य का साहित्य वह होगा जिसमें नारी की यौनिकता को मुद्दा न बनाकर उसकी अस्मिता, अस्तित्व, सम्मान और समानता को मुद्दा बनाया जाएगा! (पृष्ठ 41) 'हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार' आलेख में गीता ने केवल हिंदी लेखकों का ही नहीं वरन् उड़िया, तमिल, मलयालम, मराठी आदि लेखकों की नारी-सरोकार संबंधित कृतियों पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण विवरण दिए हैं। उनका मत है कि आज साहित्य में रोती-कलपती स्त्री नहीं, बल्कि अपनी स्वतंत्र इकाई होने का अहसास करने वाली, हक़ माँगती स्त्री का सृजन होने लगा है। (पृष्ठ 45)

प्रो. (डॉ.) पूरनचंद टंडन जी ने प्रेमचंद युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग के साहित्य (उपन्यास, कहानियों) में नारी-विमर्श संबंधित सरोकारों का विद्वतापूर्ण एवं सूक्ष्म-विवेचनात्मक आलेख 'आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में नारी-सशक्तिकरण के विविध आयाम' प्रस्तुत किया है। (पृष्ठ 47-62) अंत मे, वे निष्कर्ष स्वरूप अपने मन की पीड़ा को मुखरित कर उठते हैं, ''साहित्य में नारी को सशक्त बनाने की दिशा में अनेक प्रयास हुए। परंपरागत मूल्यों के विरुद्ध आवाज़ लगभग सभी कथा-सर्जक उठाते रहे हैं' स्त्री अस्मिता की खोज भी सभी के द्वारा की गई है, लेकिन अमानवीय आचरण के विरुद्ध जो सशक्त आवाज़ (मुझ समीक्षिका डॉ. उषा देव की राय में -- फ़ास्ट ट्रेक पर क़दम -- परिवार, समाज, न्याय-प्रणाली या सरकार की ओर से) उठानी चाहिए, वह केवल कुछ ही कथा सर्जकों के यहाँ मिलती है।'' (पृष्ठ 62)

डॉ. अनिल कुमार 'साहित्य में स्वाधीनता हेतु स्त्री-विमर्श' नामक अपने आलेख में कटु शाश्वत सत्य को नपे-तुले शब्दों में कहते हैं, ''भारत-संविधान में लिंग भेद नहीं है -- लेकिन आए दिन यौन-उत्पीड़न, बलात्कार, घरेलू-हिंसा, कन्या-भ्रूण हत्या, दहेज-प्रथा

आदि ख़बरें सुर्खियाँ बनी रहती हैं... स्त्रियों को अधिकार दिए गए पर उनका स्त्रियों ने उपयोग किया या करना चाहा लेकिन पुरुष की सामंती मानसिकता स्त्रियों की स्वतंत्रता को सहन नहीं कर पा रही। सो आज भी समाज का रवैया स्त्रियों के प्रति 'कथनी और करनी' में बड़े अंतर वाला है। (पृष्ठ 111) सो, मैं (डॉ. उषा देव) अनिल कुमार जी को इस सपाट सत्य-उद्‌गारों के लिए साधुवाद एवं बधाई देती हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में इस विषय पर जिन लेखकों उदाहरणतः 'पंजाबी नाटकों में महिला सरोकार -- शालू कौर; 'क्रांतिकारी लेखिका -- सुष्मिता बंदोपाध्याय -- डॉ. गीता शर्मा; तमिल साहित्य में महिला सरोकार -- डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम्; 'स्त्री सरोकार ओर महादेवी वर्मा -- डॉ. मुक्ता; 'महादेवी की दृष्टि में महिला सरोकार -- डॉ. प्रवेश सक्सेना आदि जिन विद्वत्‌ज्जनों के आलेख संकलित हैं, वे इसे निश्चित रूप से नारी-शिक्षा, उत्थान, जागरण, कल्याण आदि के शुभाकांक्षी हैं। यही नहीं, सुमन कुमारी ने अपने आलेख 'आधुनिक विज्ञापन और महिलाएँ' में अपना आक्रोश विज्ञापन की दुनियाँ पर व्यक्त करते हुए लिखा, ''हमने मीट के एक पीस की तुलना कामुक रूप से महिलाओं से करने पर इसकी आलोचना तो की, किंतु टी.वी. पर रोज़ नज़र आने वाले उन विज्ञापनों का क्या जो रोज़ महिलाओं का कामुक, अश्लील चित्रण करते हैं।'' (पृष्ठ 96)

'स्त्री केंद्रित सिनेमा का बदलता स्वरूप : एक आलोचनात्मक अध्ययन आलेख में नेहा गोस्वामी ने पिछली पूरी सदी के चलचित्रों में नारी किरदारों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वे अपने आलेख में निष्कर्ष को इन शब्दों में बयान करती हैं, ''समकालीन सिनेमा ('द डर्टी पिक्चर', 'इंग्लिश-विंग्लिश', 'बैंडिड क्वीन', 'एन-एच-10', 'मेरी कॉम') में स्त्रियाँ मुख्य भूमिका में आई हैं। पर स्त्री-केंद्रित होने के बावजूद भी नारीवादी विमर्श पर पूरी तरह खरी नहीं उतरतीं।'' (पृष्ठ 173) अंत में वे सुझाव दे उठती हैं, ''इसीलिए आगामी स्त्री केंद्रित सिनेमा में नारीवादी दृष्टिकोण से और अधिक सुधार करने की जरूरत है एवं इनको और अधिक संवेदनशील बनाने की जरूरत है, जिससे समाज को परिवर्तन के लिए प्रेरणा मिले और सिनेमा के माध्यम से स्त्रियों का समाज में एक बेहतर स्थान सुनिश्चित हो सके।'' (पृष्ठ 173)

'मेरा रचना संसार और महिला सरोकार' लेखिका : डॉ. उषा देव ने कहा है कि ''देश के नेता, अभिनेता, न्यायाधीश ही क्या; हर पुरुष -- चाहे वह पिता, भाई, पति या पुत्र ही क्यों न हो, उससे मेरा एक ही प्रश्न है कि क्या उसने अपने जीवन में इन पात्रों की भूमिका में अपनी पत्नी, बहन या माँ को यथा-योग्य सम्मान दिया है? लंबे-लंबे भाषण देना, छाती फुलाकर नारी-सशक्तिकरण की डींग हाँकना -- ये सब थोथी बातें हैं। जिस दिन एक बेटा 'माँ' को सैद्धांतिक रूप से ठीक-ठीक सम्मान देना सीख जाएगा, तब वह एक अच्छा भाई, पति और पिता भी बन जाएगा। पर भारत देश की असंख्य समस्याओं

-- अशिक्षा, जनसंख्या विस्फोट, नशाखोरी, जाति-भेद, बेरोज़गारी, भुखमरी, पग-पग पर भ्रष्टाचार इत्यादि को आमूल समाप्त करना जैसे कठिन है वैसे ही नारियो की बहुमुखी समस्याओं (पीड़ाओं) को दूर करना भी। बस प्रयासरत् हर व्यक्ति रहे। घर रूपी पाठशाला ही व्यक्तित्व का निर्माण करती है फिर चाहे वह नर हो या नारी।'' (पृष्ठ 204)

डॉ. अभय शंकर द्विवेदी जी ने 'मुक्ता की कहानियों में 'महिला सरोकार' आलेख में ही हमारे समाज की कुरूपता का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया है, ''गाँव में महिला सीट हो गई... लेकिन क्या फायदा... मर्द औरत को दबैल बना कर खुद शासन करेगा। राज तो मर्दों का ही होगा।'' (पृष्ठ 159) सच में, हर स्थान, स्थिति एवं पल-पल यही मानव-समाज में होता रहा, हो रहा है और होता ही रहेगा -- ऐसी मेरी संकल्पना है।

संपादिका सन्तोष खन्ना जी को भी बधाई देती हूँ कि उन्होंने गणमान्य लेखकों के विद्वतापूर्ण आलेखों को एक सुंदर पुस्तक का रूप देकर हिंदी साहित्य जगत के प्रांगण में आकाश-दीप-सा स्थापित कर दिया है। उनकी ही नहीं, (सन्तोष खन्ना जी) इस युग के हर संवेदनशील नर/नारी की यही कामना है कि (नारी-नर के आधे भाग स्वरूप) कलमबद्ध विषयों पर चिंतन-मनन कर वे (नर/नारी) एक-दूसरे को मानवोचित्त सम्मान (कम-से-कम कार्यपद्धतियों से) देने का प्रयास करें। आशा है कि वे यह सब करने में अंतोगत्व सफल अवश्य होंगे।

हाँ, मुख-पृष्ठ की सज्जा के विषय में भी दो शब्द कहने का मन हो आया है। वास्तव में, नारी ही सृष्टि-संचालन की धुरी है। वैसे तो सृष्टि के प्रत्येक जड़-चेतन की सुप्त-असुप्त एक ही कामना होती है कि जीवन सरल, सहज रूप से व्यतीत हो जाए। पर बुद्धि, ज्ञान एवं विवेकशील मानव की यह इच्छा समय-समय पर मुखरित हो ही जाती है। यहाँ प्रश्न नारी का है। प्रकृति-प्रदत्त कर्त्तव्य-पालन में रत् एवं एक-निष्ठ वह परम पिता की पुत्री जीवन के हर क्षेत्र में हरियाली (खुशियाँ ही खुशियाँ) चाहती है; क्या बुरा करती हैं? हाँ, जब उसकी संतति निच्छल प्रेमोद्रेक में उसके गले लग जाती है तो वह प्रसव-पीड़ा को ही नहीं, जीवन-मार्ग की अनेकानेक कठिनाइयों, अभावों, उत्पीड़नों को भूल जाती है। हरी-भरी पृष्ठ-भूमि, स्वच्छ निर्मल जलाशय, साफ-सुथरी मखमली घास ही नहीं, माँ का हरे रंग का परिधान और प्यार के प्रतीक गुलाबी रंग का फ्रॉक पहने पुत्री का प्यार से गले लगते ही ममतामयी माँ की मुस्कराहट -- ऐसा सुंदर एवं कल्पनाशील मुख पृष्ठ सब सहृदय पाठक के दिलो-दिमाग में अवर्णनीय तथा अतुलनीय हर्षातिरेक का संचार कर देता है। पुनः संपादिका एवं सुधीजनों (लेखकों) को बधाई।

'हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार', संपादन : सन्तोष खन्ना, प्रकाशक : विधि भारती परिषद, प्रथम संस्करण : 2016, मूल्य : 450 रुपए मात्र। पृष्ठ सं. 224

❑

फोन : 011-27491549
मोबाइल : 09899651272

संस्थागत सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

संख्या : ..... दिनांक : .....

सेवा में

महासचिव
महिला विधि भारती परिषद्
बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

महोदय/महोदया

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ्ट संलग्न है।

1.	संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
2.	संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क	20,000/-- रुपए
3.	वार्षिक सदस्य शुल्क	450/-- रुपए
4.	आजीवन सदस्य शुल्क	4000/-- रुपए

नाम : .....

शैक्षिक योग्यता : .....

व्यवसाय : .....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : .....

स्थाई पता : .....

फोन (कार्यालय) : ..... **(घर) :** .....

मोबाइल : ..... **ई-मेल :** .....

आपका/आपकी आभारी

नोट : अपना शुल्क केवल विधि भारती परिषद् के नाम से ही भेजें।

वार्षिक डाक प्रभार शुल्क : दिल्ली 50/-- रुपए; दिल्ली से बाहर के लिए शुल्क 100/-- रुपए